हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ११० वाँ रत्न

कुलीनता

(तीन अंकोंमें एक ऐतिहासिक नाटक)

" सूतो वा सूतपुत्रो वा, यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म, मदायत्तं तु पौरुषम् ॥ "

—कर्ण (वेणीसंहार)

लेखक

गोविन्ददास

प्रकाशक

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई ४

पहली आवृत्ति
जनवरी, १९४१

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिन्टिंग प्रेस,
६, केलेवाडी बम्बई नं० ४

प्रकाशककी ओरसे

सेठ गोविन्ददासजी एम० एल० ए० केवल देशसेवक ही नहीं हैं साहित्य-सेवक भी हैं। नाटक-रचनाकी ओर आपकी अधिक रुचि है और हिन्दीके इसी अंगको पुष्ट करनेमें आप लगे हुए हैं। अपनी देशभक्तिके उपहारमें पाये हुए जेल-निवासका सदुपयोग आपने इसी काममें किया है। आपके कर्तव्य, श्रीहर्ष, प्रकाश, स्पर्द्धा, सेवा-पथ आदि कई नाटक प्रकाशित हो चुके हैं और उनकी काफी प्रशंसा हुई है। नाट्यकलामीमांसा नामका एक निबन्ध भी आपने लिखा है जो आपके नाट्य-शास्त्रविषयक गंभीर अध्ययनको प्रकट करता है। इधर आपने अनेक एकांकी नाटक भी लिखे हैं जो विविध मासिकपत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं।

प्रस्तुत नाटक भी सेठजीकी सुन्दर और मौलिक रचना है। आशा है, इसका भी हिन्दी संसारमें आदर होगा।

इस नाटकका छपना प्रारंभ होते ही सेठजी फिर जेल चले गये और इस कारण इसका प्रूफ-संशोधन वे स्वयं न कर सके। हमने अपनी शक्ति-भर प्रयत्न तो किया है, कि अशुद्धियाँ न रहने पावें, फिर भी, यदि कुछ रह गई हों, तो पाठक इसके लिए हमें क्षमा करें।

निवेदन

'कुलीनता' नाटक सन् १९३२ में मेरी दूसरी जेल-यात्राके वक्त नागपुर जेलमें लिखा गया था। इसके बाद इसमें कई परिवर्तन हुए। सन् १९३५ में बम्बईकी 'आदर्श चित्र' फिल्म कंपनीने इस नाटककी कथापर 'धुआँधार' नामक फिल्म भी बनाया, लेकिन कथामें परिवर्तन होते होते फिल्ममें जिस कथाका प्रदर्शन हुआ वह इस नाटकसे एक अलग-सी ही चीज़ हो गई थी। इस समय यह नाटक जिस रूपमें हिन्दी संसारके सम्मुख जा रहा है वह न सन् १९३२ का इसका रूप है और न 'धुआँधार' फिल्मकी कथाका। अनेक परिवर्तनोंके बाद इसे यह रूप मिला है।

'कुलीनता' त्रिपुरी राज्यकी एक विशेष ऐतिहासिक घटनापर लिखा गया है। यह घटना उस कालकी है जब त्रिपुरीपर प्रसिद्ध कलचुरि वंशके अन्तिम राजा विजयसिंह देवका राज्य था और जब कलचुरि वंशका अन्त और राज-गोंड-वंशका आरंभ हुआ।

मध्यकालके भारतीय इतिहासमें त्रिपुरी और उसके शासक कलचुरि क्षत्रियोंका बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है। कलचुरि क्षत्रिय अपनेको हैहय वंशकी एक शाखा मानते हैं। हैहयवंशके प्रसिद्ध राजा सहस्रार्जुनका नाम रामायण, महाभारत और अनेक पुराणोंमें आया है। हैहयवंशकी कलचुरि शाखाका आरंभ कब हुआ, इसका ठीक पता नहीं लगता। प्रोफेसर कीलहार्नने त्रिपुरीके महाराजाओंके पन्द्रह नाम लिखे हैं। कलचुरि वंशके नरेशोंमें पहला नाम कोकल्लदेव (प्रथम) का मिलता है और अन्तिम नाम विजयसिंह देवका। प्रोफेसर कीलहार्नने कोकल्लदेवका समय ईस्वी सन् ८६० और ९०० के बीचमें निश्चित किया है और विजय सिंह देवका ११८० और ११९६ के बीच।

कल्चुरियोंके इन पन्द्रह नरेशोंमें सबसे महान् गांगेयदेव और उनके पुत्र कर्णदेव थे। गांगेय देवका समय था ई० सन् १०१५ से १०४० तक और कर्ण देवका ई० सन् १०४१ से १०७३ तक।

कल्चुरि वंशकी सत्ता और संस्कृति दोनों ही इनके राज्य-कालमें चरम सीमाको पहुँची। गांगेयदेव और कर्णदेव दोनों ही महान् दिग्विजयी हुए। कर्णदेवका कल्चुरि वंश सारे भारतवर्षका सबसे प्रधान राजवंश था और इस वंशका राज्य भारतवर्षका उस कालका सबसे बड़ा राज्य। कर्णदेवके दो राज्याभिषेक हुए—एक उनके पिता गांगेयदेवकी मृत्युके बाद ई० सन् १०४१ में और दूसरा ई० सन् १०५१ में सारे भारतको विजय करनेके पश्चात् भारत-सम्राट्के पदपर। त्रिपुरी उनके समय समस्त भारतकी राजधानी मानी जाती थी।

कल्चुरि वंशके समयके अनेक शिलालेख और सिक्के मिले हैं। शिलालेखोंसे इनके महान् बल, प्रताप और वैभवका पता चलता है। कर्णदेवकी तुलना महाभारतके कर्णसे की गई है और आधुनिक इतिहासज्ञोंने उन्हें भारतीय नेपोलियन कहा है। गांगेयदेवको विक्रमादित्यकी उपाधि थी। कल्चुरि राजाओंकी अन्य उपाधियोंमें परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राज-त्रयाधिपति, त्रिकलिंगाधिपति मुख्य थीं। इन उपाधियोंसे इनकी महत्ताका पता लगता है। इनके समयके, विशेषकर गांगेयदेवके समयके, सिक्कोंमें सोनेके सिक्के भी मिलते हैं। इन सोनेके सिक्कोंमेंसे कुछका वजन लगभग ६२ ग्रेन तक है।

कल्चुरियोंके समय वास्तु-मूर्ति-कलाका बड़ा उत्कर्ष हुआ। इस कालकी अनेक चीजें अब भी त्रिपुरीके आसपास प्रचुर परिमाणमें मिलती हैं। कल्चुरि पहले बौद्ध थे और बादमें उन्होंने शैव मत ग्रहण कर लिया था। साहित्यकी भी इनके कालमें काफी उन्नति हुई थी। संस्कृतके प्रसिद्ध कवि राजशेखर इन्हींकी सभाके कवि-रत्न थे। शासन-व्यवस्थामें भी ये अपने पहलेके किसी भी उन्नत राजवंशके पीछे नहीं रहे।

गांगेयदेवके वक्त महमूद गजनवीके भारतपर १८ हमले हुए, लेकिन गांगेयदेवके प्रतापके कारण महमूदका साहस त्रिपुरीपर आक्रमण करनेका

नहीं हुआ। उसके बाद उसके सूबेदार अहमदने जब कलचुरियोंके राज्य-पर आक्रमण किया तब गांगेयदेवने उसे बुरी तरह हराया।

संसारमें जिसका उत्थान हुआ है उसका पतन भी अवश्यंभावी है। प्रतापी कलचुरि वंशका विजयसिंह देवके समय पतन हुआ।

जिस समय विजयसिंह देव त्रिपुरीपर राज्य कर रहे थे उस समय त्रिपुरीकी तो पतित अवस्था थी ही, परन्तु सारा भारतवर्ष ही पृथ्वीराज और जयचन्दके कलह तथा अन्य अनेक कारणोंसे निर्बल हो रहा था। न तो ऐसा कोई बलशाली राज्य था और न ऐसा बलवान् सम्राट, जो बढ़ते हुए इस्लामसे भारतवर्षकी रक्षा कर सकता। महमूद गजनवीके आक्रमणोंने भी भारतको कमज़ोर बना दिया था, लेकिन उसके समय गांगेयदेव सदृश बलशाली सम्राट् मौजूद थे। गांगेयदेवके पश्चात् उनके पुत्र कर्णदेवके सदृश पराक्रमी सम्राट् हुए।

सन् ११७५ ईस्वीसे भारतपर मुहम्मद गोरीके आक्रमण आरंभ हुए। सन् ११९१ में वह पृथ्वीराजसे हारा, किन्तु सन् ११९२ में उसने पृथ्वीराजाको हराया और सन् ११९४ में जयचन्दको। इन विजयोंके बाद मुहम्मद गोरी अपने भारतीय साम्राज्यको अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबकको देकर गोर लौट गया। इस वक्त त्रिपुरीपर विजयसिंह देवका राज्य था और इस नाटककी घटनाका यही काल है।

विजयसिंह देवका मंत्री सुरभी पाठक नामक व्यक्ति था। सुरभी पाठककी सहायतासे गोंड़ यदुरायने त्रिपुरी राज्यपर अपना आधिपत्य जमाया। मण्डलापर उस समय नागदेव नामक गोंड़ राजा राज्य करता था। त्रिपुरी-पर विजयसिंह देवके बाद किसी कलचुरि राजा और मण्डलापर नागदेवके पश्चात् नागदेवके किसी वंशजके राज्यका इतिहासमें उल्लेख नहीं मिलता। यदुरायके वंशका नाम राजगोंड-वंश हुआ और विजयसिंह देवके बाद मराठोंके उत्पात तक त्रिपुरीपर इसी वंशने राज्य किया। इसी वंशमें प्रसिद्ध गोंड़ राजा संग्रामशाह और महारानी दुर्गावती हुईं।

यदुरायके सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। जो कुछ हो, इतिहासज्ञोंका बहुमत यह मानता है कि वह गोंड़ था और उसने एक नये राजवंशकी स्थापना की थी। इतिहासज्ञ यह भी मानते हैं कि यह कार्य कल-

चुरियोंके मंत्री सुरभी पाठककी सहायतासे हुआ। अधिकाश इतिहासज्ञोंने कहा है कि यदुरायके दो विवाह हुए—एक नागदेवकी कन्या रत्नावलीसे और दूसरा किसी क्षत्रिय कन्यासे। उसका वंश चला इस क्षत्रिय कन्याकी सन्तातिसे, इसलिए राजपूत और गोंड-रक्तके मिश्रणके कारणसे इस वंशका नाम राजगोंड़-वंश हुआ।

इस कालका ब्योरेवार इतिहास नहीं मिलता। कल्चुरियोंके पतन और गोंड़ोंके उत्थानके कारणके सम्बन्धमें भी इतिहासज्ञ मौन हैं। व्यक्तिगत उत्थानकी अभिलाषा ही यदुराय और सुरभी पाठकके कार्योंका कारण हो सकती है, यही इतिहासज्ञोंका अंदाज है, लेकिन इसके लिए उनके पास कोई प्रमाण नहीं।

ऐतिहासिक घटनाओंमें नाटक उपन्यास या कहानी-लेखकको कितनी स्वतंत्रता लेनेका अधिकार है और कितना नहीं, इस सम्बन्धमें मैंने अपना विनम्र मत अपने एक ऐतिहासिक नाटक 'हर्ष' की भूमिकामें लिखा है—

" मेरा मत है कि नाटक, उपन्यास या कहानी-लेखकको यह अधिकार नहीं है कि वह किसी भी पुरानी कथाको तोड़-मरोड़ कर उसे एक नई कथा ही बना दे। हाँ, कथाका अर्थ (interpretation) वह अवश्य अपने मतानुसार कर सकता है।"

कल्चुरियोंके पतन और राजगोंडवंशके उत्थान तथा तत्संबन्धी अन्य बातोंके सम्बन्धमें मैंने इसी नीतिका अनुसरण किया है।

इस नाटकके मुख्य पात्र विजयसिंह देव, सुरभी पाठक, यदुराय और नागदेव ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। यदुरायकी क्षत्रिय पत्नीको मैंने विजयसिंह देवकी कन्या माना है। इतिहासमें नाम न मिलनेके कारण मैंने उसका नाम रेवासुन्दरी रखा है। चण्डपीड, देवदत्त और विन्ध्यबाला काल्पनिक पात्र हैं। प्राचीनताकी झलक लानेके लिए मैंने संबोधन प्राचीन ही रखे हैं। साथ ही दृश्य और वेश-भूषा भी उसी कालके अनुरूप रहें, इसका ध्यान रखनेकी भी कोशिश की है।

इस नाटकके लिखनेमें निम्न लिखित ग्रन्थोंसे सहायता ली गई है : (१) विन्सेण्ट स्मिथद्वारा लिखित (हिस्ट्री आफ एन्शेण्ट इंडिया), (२) सी० वी० वैद्य द्वारा लिखित (हिस्ट्री आफ मेडीवल हिन्दू इंडिया), (३)

सेण्ट्रल प्राविन्सेज गैजेटियर, (४) जबलपुर डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटियर, (५) मण्डला डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटियर, (६) रा० ब० हीरालालद्वारा लिखित 'जबलपुर ज्योति', (७) रा० ब० हीरालालद्वारा लिखित ' मण्डलामयूख ' (८) रा० ब० हीरालालकृत ' इन्सक्रिपशन्स इन सी० पी० एण्ड बरार ', (९) आर० डी० बैनरजीकृत ' त्रिपुरी एण्ड देअर मान्यूमेण्ट्स', (१०) बिशप चैटरटनद्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ गोण्डवाना', (११) सी० जे० ब्राऊनकृत ' दि कॉइन्स ऑफ इंडिया ' ।

इस नाटकके एक पद्यको छोड़कर जो पहले अंकके तीसरे दृश्यमें रेवासुन्दरी और विन्ध्यबालाद्वारा गाया गया है, और जो मेरा लिखा हुआ है, शेष सारे पद्य मेरी पुत्री रत्नकुमारीने लिखे हैं ।

गोपालबाग, जबलपुर
विजयादशमी, संवत् १९९७

गोविन्ददास

नाटकके मुख्य पात्र

पुरुष

यदुराय	—	एक गोंड़ सैनिक
विजयसिंह देव	—	त्रिपुरीका कलचुरि क्षत्रिय राजा
सुरभी पाठक	—	विजयसिंहदेवका मंत्री और यदुरायका गुरु
चण्डपीड	—	विजयसिंहदेवका सेनापति, पीछेसे मंत्री
देवदत्त	—	विजयसिंहदेवका उपसेनापति, पीछेसे सेनापति
नागदेव	—	मण्डलाका गोंड़ राजा

स्त्री

रेवासुन्दरी	—	विजयसिंह देवकी कन्या
विन्ध्यबाला	—	देवदत्तकी पत्नी, रेवासुन्दरीकी सखी

स्थान

त्रिपुरी	—	बन्दर-कूदनी, धुआँधार, मण्डला

कुछ ऐतिहासिक पदवियाँ और उनके अर्थ

परमभट्टारक, परमेश्वर=राजा ।

सान्धिविग्रहिक, महामात्य, महामंत्री=प्रधान मंत्री ।

महासेनापति, महाबलाधिकृत=प्रधान सेनापति ।

महामुद्राधिकृत=जिसके पास राजमुद्रा (मोहर) रहती थी ।

महाधर्म्माध्यक्ष=एक प्रकारका पुरोहित ।

राजस्थानीय=प्रान्तका सूबेदार, प्रान्तके मुख्य नगरमें रहनेवाला राज-प्रतिनिधि ।

भुक्तिपति=जिलेका अधिकारी ।

विषयपति=तहसीलदार ।

अक्षपटलिक=ग्रामका राजकर्मचारी (पटैल) ।

महादण्डनायक=न्यायाधीश ।

दण्डपाशिक और दण्डक=जेलके अधिकारी ।

महाप्रतिहार=राजाके पास रहनेवाला अर्दली ।

प्रतिहार=चपरासी, द्वाररक्षक, द्वारपाल ।

भट=सैनिक ।

चाट=पुलिसका चपरासी ।

अश्वपति, गजपति, नरपति राजत्रयाधिपति=कलचुरि राजाओंकी एक उपाधि । कहा जाता है कि इस उपाधिको इनके ग्रहण करनेका यह कारण था कि कान्यकुब्जके राजाओंको अश्वपति, वंगके राजाओंको गजपति और आन्ध्रके राजाओंको नरपति कहते थे और कलचुरि राजा गांगेयदेव तथा उसके पुत्र कर्णदेवने इन तीनोंको जीता था ।

त्रिकलिंगाधिपति=कलचुरि राजाओंकी दूसरी उपाधि । कहा जाता है कि त्रिकलिंगको जीतनेके पश्चात् यह उपाधि कलचुरि राजाओंने ग्रहण की थी ।

कुलीनता

पहला अंक
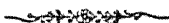
पहला दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राज-प्रासादका सभा-भवन

समय—रात्रि

[सभा-भवन पाषाणका बना हुआ है। तीनों ओरकी भित्तियोंपर सुन्दर चित्रकारी है। तीनों भित्तियोंमें अनेक द्वार हैं जिनकी चौखटें पाषाणकी और किवाड़ काठके हैं। चौखटों और किवाड़ोंमें खुदाईका काम है। अनेक द्वार खुले हुए हैं, जिनसे बाहरके उद्यानका कुछ भाग दिखाई देता है, जो चाँदनीमें चमक रहा है। पाषाणके स्तम्भोंपर सभा-भवनकी छत है। स्तम्भोंके नीचे कुंभी (चौकी) और ऊपर भरणी (टोड़ी) है। भरणीपर झरोखे हैं। स्तम्भ, कुंभी, भरणी और झरोखोंके पाषाणोंमें खुदाईका काम है और खुदी हुई बेलोंपर सुवर्णका काम किया गया है। बेलके पुष्प और फल रत्नोंसे जड़े हैं। सभा-भवनके बीचमें सुवर्णकी बनी हुई और स्थान स्थानपर हाथी-दाँतके कामसे युक्त एवं रत्नोंसे जटित

' शयन ' * रखी है। इसके गद्दे और तकिये कौशेय वस्त्रमे ढके हैं, जिसके सिरोंपर मोती-झालर लगी हुई है। शयनके दोनों ओर दो बड़ी बड़ी आसंदी + तथा इन दोनोंके निकट अनेक छोटी छोटी आसंदिएँ पंक्तिमें रखी गई हैं। ये भी सुवर्णकी बनी हुई हैं और इनमें भी रत्न जड़े गये हैं। इनके गद्दे तकिये भी कौशेय वस्त्रसे ढके हुए हैं। यत्र तत्र ऊँची ऊँची सुवर्णकी दीवटोंके रत्न-जटित सुवर्ण पात्रोंमें सुगन्धियुक्त तेलके दीपक जल रहे हैं। इसी प्रकार सुवर्णकी धूप-दानियोंमें धूप जल रही है, जिसका थोड़ा थोड़ा धूम्र निकलकर सभा-भवनको सुगन्धित किये हुए है। शयनपर विजयसिंह देव बैठे हुए हैं। उनकी अवस्था लगभग ५० वर्षकी है। साँवला रंग, दुबला एवं ठिंगना शरीर है। सिर और मूँछोंके लम्बे बाल श्वेत हो चले हैं। सिरपर अर्धचन्द्राकार पुष्पमाला बड़ी सुन्दरतासे बँधी हुई है। शरीरपर उत्तरीय × और अधोवस्त्र $ धारण किये हैं। ये वस्त्र कौशयके हैं। इनकी किनार सुनहरी है और उत्तरीयके कोनोंपर राजहंस बने हैं। वे कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार, भुजाओंपर केयूर, हाथोंमें वलय और उँगलियोंमें मुद्रिकायें पहने हैं। सब आभूषण रत्नजटित हैं। उनके मस्तकपर त्रिपुण्ड और पैरोंमें काष्ठकी पादुका हैं। मुख निस्तेजपर आँखें बड़ी और नाक लम्बी है। शयनके दाहिनी ओरकी बड़ी आसंदी रिक्त है। बाँई ओरकी बड़ी आसंदीपर चण्डपीड बैठा हुआ है तथा छोटी आसंदियोंपर सामन्त और कुलपुत्र + बैठे हैं। चण्डपीड लगभग ३० वर्षका, साँवले रंगका, ठिंगना और मोटा मनुष्य है। सिरके बाल काले और लम्बे हैं। बड़ी बड़ी काली मूँछें और काले गलमुच्छे हैं। आँखें बड़ी और नाक लम्बी है। उसका सिर खुला है, मस्तकपर केशरका त्रिपुण्ड लगाये हुए है। श्वेत उत्तरीय और अधोवस्त्र शरीरपर धारण किये है। ये वस्त्र कपासके पतले सूतके बने हैं और इनकी किनार सुनहरी है। उसके कानोंमें भी कुण्डल, गलेमें हार, भुजाओंमें केयूर* हाथोंमें वलय× हैं। ये सब आभूषण सुवर्णके बने हैं और इनमें रंग बिरंगे रत्न जड़े हुए हैं। पैरोंमें वह भी काष्ठकी

---

* एक प्रकारका सोफा जिसे उस समय ' शयन ' कहते थे।

+ एक प्रकारकी कुर्सियाँ जिन्हें उस समय ' आसंदी ' कहते थे।

× दुपट्टा। $ धोती। + राजवंशमें उत्पन्न राजाके नातेदार। * भुजबन्ध। × कड़े

पादुका धारण किये हुए है। उसकी पीठपर तरकश, बाँयें कन्धेपर धनुष और बाँई ओर कमरमें जड़ाऊ मूठका खड्ग लटक रहा है। सामन्तों और कुलपुत्रोंकी वेश-भूषा भी चण्डपीडके सदृश ही है, परन्तु वे आयुधोंसे सज्जित नहीं हैं। सभीके मस्तकोंपर केशरका त्रिपुण्ड है। सिंहासनके पीछे पाँच युवतियाँ खड़ी हैं। बीचकी युवती हाथी-दाँतकी दाँड़ीका श्वेत कौशेय वस्त्रका जरीका छत्र लगाये है। छत्रके चारों ओर मोतीकी झालर है। बीचकी स्त्रीके दोनों ओर दो दो युवतियाँ हैं। इनमेंसे दो सुवर्णकी दाँड़ीवाले श्वेत सुरागायकी पुच्छके चँवर डुला रहीं हैं और दो सुवर्णकी दाँड़ीवाले खसके व्यजन। पाँचों साँवले वर्णकी होनेपर भी सुन्दरियाँ हैं। सब कौशेयके अधोवस्त्र पहने हैं तथा उसी प्रकारके वस्त्र वक्षस्थलपर बाँधे हैं। सभी रत्नजटित आभूषण भी धारण किये हैं। सिर सबके खुले हैं। केशोंके जूड़े बँधे हैं जिनमें पुष्पमालाएँ हैं। मस्तकपर लाल टिकली है। सभामें चार नर्तकियोंका नृत्य हो रहा है। चारोंकी अवस्था लगभग २५ वर्षकी है। वर्ण गौर है और सभी सुन्दरियाँ हैं। वेष-भूषा वाहिकाओंके समान ही है, केवल एक अन्तर है—नीचेके वस्त्रमें घेर अधिक है, जो नाचनेके लिए जान पड़ता है। आभूषण भी रत्नजटित हैं। सब लोग 'वाह वाह' कह रहे हैं। विजयसिंह देव सुरा-पान करते और ताम्बूल खाते हैं।

[सुरभी पाठकका प्रवेश]

सुरभी पाठक लगभग ७० वर्षका, बहुत ऊँचा, गठे हुए शरीर और गौर वर्णका मनुष्य है। सिरपर लम्बे बाल और पीछेको गोखुरके बराबर चौड़ी गाँठ बँधी हुई शिखा है। बड़ी बड़ी मूँछें और नाभि तक फैली हुई दाढ़ी है। सिर, शिखा, मूँछें, दाढ़ी और भवोंके सारे बाल श्वेत हो गये हैं। मस्तकपर भस्मका त्रिपुण्ड है। श्वेत रंग और बिना किसी रंगकी किनारके सूती और मोटे उत्तरीय तथा अधोवस्त्र हैं। शरीरपर कोई आभूषण नहीं है। कन्धेपर सफेद मोटा यज्ञोपवीत दिखाई देता है। भुजाओंपर भस्मकी तीन तीन पंक्तियाँ लगी हुई हैं। पैरोंमें काष्ठकी पादुकायें हैं, मुखपर कान्ति है और बालोंकी श्वेतताके अतिरिक्त वृद्धावस्थाका कोई प्रभाव मुख अथवा शरीरपर दृष्टिगोचर नहीं होता। सुरभी पाठकके हाथमें एक कागज है।]

सुरभी पाठक—(कड़ककर) बन्द करो यह नृत्य और हट जाओ नर्तकियो ! जो कुछ मुझे ज्ञात हुआ है यदि वह सत्य है तो महाकोशलके साम्राज्यके लिए, इस त्रिपुरी नगरके लिए, आजका दिवस हर्षका नहीं, दुःखका है, सन्ताप करनेका है। सामन्त, कुलपुत्र, सब यहाँसे प्रस्थान करें और वाहिकाएँ भी चली जायँ; मुझे एकान्तमें परम भट्टारकसे कुछ निवेदन करना है।

[सुरभी पाठकके शब्द सारे सभा-भवनमें गूँज जाते हैं। तत्काल नृत्य बन्द हो जाता है। राजा, सेनापति और सुरभी पाठकको छोड़ शेष सब चले जाते हैं।]

सुरभी पाठक—(शयनके निकट जाकर और हाथका कागज आगे बढ़ाकर) राज-मुद्रासे युक्त यह पत्र शहाबुद्दीन गोरीके सूबेदार कुतुबुद्दीन ऐबकके पास परम भट्टारककी आज्ञासे जा रहा था ?

विजयसिंह देव—हाँ, महामंत्रीजी।

सुरभी पाठक—और उसमें सान्धि-विग्रहिक महामात्यकी सम्मतिकी कोई आवश्यकता न थी ?

विजयसिंह देव—मुझे आपकी सम्मति ज्ञात थी।

सुरभी पाठक—उस सम्मतिको जानते हुए भी महाराजने इस प्रकारका उत्तर देना उचित समझा ?

विजयसिंह देव—हाँ, बहुत कुछ सोचने विचारने और परिस्थितिका ध्यानपूर्वक मनन करनेके पश्चात् यही ठीक प्रतीत हुआ।

सुरभी पाठक—यह श्रीमानका अन्तिम निर्णय है ?

विजयसिंह देव—यदि यह न होता तो मैंने महामुद्राधिकृतको राज-मुद्रा लगाकर यह पत्र भेजनेकी आज्ञा क्यों दी होती ?

सुरभी पाठक—और इस निर्णयको परम भट्टारक राज्य-धर्म्मके अनुसार उचित समझते हैं ?

विजयसिंह देव—धर्मकी व्याख्या तो सदा बड़ी कठिन रहती है, पर मुझे तो इसमें अधर्म कहीं दिखाई नहीं देता। यह तो शक्तिशाली मुसलमानोंसे इस समय एक प्रकारकी सन्धि कर लेनेका प्रस्ताव है, मित्रता स्थापित करनेका आयोजन है।

सुरभी पाठक—मित्रता बराबरीवालोंमें होती है, श्रीमान्। जो अपनेको सिंह और हमें बकरा समझते हैं उनसे कैसी मित्रता ? परम भट्टारक तो उनके माण्डलिक बनकर सन्धि करने जा रहे हैं। यह कैसा बन्धुत्व ?

विजयसिंह देव—शक्तिशालियोंको चक्रवर्ती मानकर व्यर्थके रक्त-पातको बचानेके लिए उनके माण्डलिक बन सन्धि कर लेना, और इस प्रकार मित्रता स्थापित करना, भारतकी प्राचीन नीति रही है, जो धर्म-युक्त मानी जाती थी। शक्तिशालीके साथ कितने नरेश युद्ध करते थे ?

सुरभी पाठक—परन्तु विदेशियोंको चक्रवर्ती मानकर नहीं। भारतमें चक्रवर्ती प्रथा केवल धर्म और सभ्यताकी एकता स्थापित रखनेके लिए चली थी, पीछेसे उसका चाहे कितना ही विकृतरूप क्यों न हो गया हो। अपने समयके श्रेष्ठतम नरेशको अन्य नरेश चक्रवर्ती मान उसे अश्वमेध और राजसूय यज्ञ करनेकी स्वीकृति दे देते थे और इस प्रकार हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक एक धर्म और एक सभ्यताकी ध्वजा फहराती रहती थी। मैं मानता हूँ उस समय विशेष रक्त-पात नहीं होता था। श्री रामचन्द्रके अश्वमेधमें बहुत थोड़े ही युद्ध हुए थे। पाण्डवोंको अपने राजसूयमें केवल मगधके जरासिन्धसे ही युद्ध करना पड़ा था। यह भी मानता हूँ कि चक्रवर्ती

अपने माण्डलिकोंको मित्र मानते थे, उनकी स्वतंत्रताका कभी अपहरण न होता था। जरासिन्धके पश्चात् उसके पुत्र सहदेवको ही मगधका सिंहासन मिला था। क्या श्रीमान् शहाबुद्दीनके माण्डलिक होकर कुतुबुद्दीनसे यह आशा करते हैं? महाराज, कान्यकुब्जपति जयचन्दने भी यही आशा की थी।

विजयसिंह देव—कान्यकुब्ज और महाकोशलमें अंतर है। वह सैकड़ों वर्षोंतक भारतवर्षकी राजधानी रह चुका था। मुसलमानोंको उसे छोड़ देना कठिन था। फिर एक ओर अनेक निर्दोषोंका व्यर्थ ही रक्त बहाना है, अनेकोंको क्रीत-दास बनवाना है, मूर्तियोंको तुड़वाना और मन्दिरोंको भ्रष्ट करवाना है, धर्मके नामपर घोर अधर्म करना है, और दूसरी ओर यह सन्धि है।

सुरभी पाठक—कैसा अधर्म, परम भट्टारक? कुछका रक्त-पात और कुछका क्रीत-दास बननेका भय मनुष्यको उसके सच्चे कर्तव्यसे च्युत नहीं कर सकता। स्वतंत्रता और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षा होते हुए एक चिउँटीके प्राण न जायँ तो बड़ी उत्तम बात है, पर स्वातंत्र्य और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षा बिना युद्धके यदि सम्भव नहीं है, तो अक्षौहिणियोंकी भी कोई गणना नहीं। भगवान् बुद्धका अहिंसा सिद्धान्त उच्च, अत्यन्त उच्च है। पराये राज्यपर आक्रमण कर व्यर्थके रक्त-पातको मैं वीरता नहीं, पर नीचता मानता हूँ, पर स्वातंत्र्यकी और सच्चे सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए अहिंसाके द्वारा जब तक कोई उपाय संसारमें नहीं निकल आता, तब तक हिंसाके भयसे देशको परतंत्र और देशनिवासियोंको दास नहीं बनाया जा सकता। मूर्तियों और मन्दिरोंसे आपका क्या अभिप्राय है महाराज? यह तो

महोबेके चन्देल नृपको जीत आपके पड़ोसी महादुर्ग कालिजरको ले लिया था*, पर आपके राज्यपर उसे आँख उठानेका भी साहस नहीं हुआ। जब उसके गज़नी लौट जाने पर उसके सूबेदार अहमदने हिन्दुओंके सर्वश्रेष्ठ तीर्थ-स्थल काशीपर आक्रमण किया तब परमेश्वर गांगेयदेव विक्रमादित्यने ही काशीको बचा कर हिन्दू धर्मकी रक्षा की थी। इतना ही नहीं श्रीमान्, उन्होंने सारे मध्यदेशसे विदेशियोंको निकाल बाहर किया था। इसीलिए तो उन्हें विक्रमादित्यकी उपाधि मिली थी। उनके पुत्र परम माहेश्वर, परम भट्टारक, परमेश्वर त्रिकलिंगाधिपति कर्णदेवका स्मरण कीजिए। उन्होंने त्रिकलिंगको जीता, मगधमें चम्पारण तक विजय प्राप्त की, मालवा विजय किया, और चोल, पांड्य, मुरल, अंग और वंगपर अपना ध्वज फहराया। उनकी सभाओंमें उन्हें एक सौ छत्तीस माण्डलिक नमन करते थे। उनके पुत्र परम भट्टारक यशःकर्ण, उनके पुत्र परम भट्टारक गयकर्ण, उनके पुत्र भट्टारक नरसिंह वर्मा, उनके पुत्र और आपके पिता परम भट्टारक जयसिंह देव सभी समानरूपसे पराक्रमी और चक्रवर्ती राजा रहे। अब उन्हींके वंशज कलचुरि नरेश विजयसिंह देव कुतुबुद्दीन ऐबकके पास शहाबुद्दीनके माण्डलिक होनेकी स्वीकृति भेज रहे हैं! वृद्धावस्थामें ब्राह्मण सुरभी पाठक यह क्या सुन रहा है, परम-भट्टारक?

विजयसिंह देव—(चण्डपीडसे) महा सेनापति, तुम तो सर्वथा चुप हो, तुम भी तो कुछ कहो।

सुरभी पाठक—अच्छा तो यह सब महासेनापतिकी सम्मतिसे हो रहा है?

---

* ये घटनायें त्रिकूटक संवत् ७७५ और ७८५ की हैं।

चण्डपीड—इसमें बुरी बात तो कुछ नहीं है, महामंत्रीजी। महा सेनापतिको भी अपनी सम्मति देनेका अधिकार है। इतना ही अन्तर है कि आप केवल भूतको देखकर अपनी सम्मति देते हैं और मैं वर्तमानको देखकर।

सुरभी पाठक—सुनूँ तो तुम्हारी क्या सम्मति है?

• चण्डपीड—यही कि केवल पीछे देखनेसे काम नहीं चलता, जो इस समय हो रहा है उसे भी देखना पड़ता है। उत्तर-पश्चिमके विदेशियोंकी यह आँधी ऐसी नहीं है जिसका सामना किया जाय। इसकी ओर पीठ ही देना होगा। जिस जिसने इसका सामना किया उसने क्या फल पाया? दिल्लीपति पृथ्वीराज और कान्यकुब्जपति जयचन्दकी क्या दशा हुई? दिल्लीके दलनका हृदयको हिला देनेवाला हाल, अजमेर पर किये गये अत्याचारोंका अत्यधिक आघात पहुँचाने-वाला आयोजन, कान्यकुब्ज और काशीके कष्टोंकी कँपा देनेवाली कथा, और अपने पड़ोसी कालिंजरका शोचनीय अधःपतन क्या आप भूल गये? उसी पथसे ही चलना क्या हमें उचित है? यह तो आपने कह दिया कि आप स्वातंत्र्य और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए रक्त-पात, लोगोंके क्रीत-दास बनाये जाने और मन्दिरों एवं मूर्तियोंके टूटनेकी चिन्ता नहीं करते, पर इतनेपर भी स्वातंत्र्य और सत्सिद्धान्तोंकी रक्षा कहाँ होती है? दूरकी बात जाने दीजिए। कालिंजर हमारे निकट है। वह अभी जीता गया है। वहाँ क्या हुआ, देखिए। वहाँके दुर्गका पानी सूख जाने और चारों ओरसे शत्रु-सेनासे घिरे रहनेसे सहस्रों वीरोंने प्याससे तड़प तड़पकर अपने प्राण दे दिये। पचास सहस्र नर-नारी और बालक दास बनाये गये। मन्दिर मस्जिदोंमें परिणत

हुए। मूर्तियाँ टूटीं। अन्तमें महोबाके अधिपति, सारे बुन्देलखण्डमें प्रसिद्ध, परम भट्टारक परमालदेवको भागकर जल-समाधि लेनी पड़ी। इतनेपर भी महोबाकी स्वतंत्रताकी रक्षा न हो सकी। उसी प्रकारकी घटनाएँ क्या आप चाहते हैं कि आपके महामंत्री और मेरे महासेनापति रहते हुए महाकोशलके साम्राज्यमें भी हों?

सुरभी पाठक—(घृणासे हँसकर) यह महाकोशलके महासेनापति, यह त्रिपुरीके महाबलाधिकृत, बोल रहे हैं। (चण्डपीडके शरीरकी आर सङ्केतकर) इस शरीरमें क्षत्रिय रक्तका प्रवाह ही है न? कलचुरि रक्त ही बह रहा है न? (विजयसिंह देवसे) महाराज, मैं क्षत्रिय नहीं हूँ, मेरे शरीरमें कलचुरि रक्त भी नहीं है, पर, श्रीमान्, ब्राह्मणोंने भी भयंकरसे भयंकर युद्ध किये हैं। सिन्धके अधीश्वर दाहर और पाञ्चालके प्रभु आनन्दपाल दोनों ब्राह्मण वंशके थे। दाहरने मुहम्मद कासिम और आनन्दपालने महमूदसे महान् युद्ध किया था।

चण्डपीड—और उसका फल क्या निकला, महामंत्रीजी? दोनों ही हारे और युद्धमें मारे गये। यही ब्राह्मणोंकी वीरता है।

सुरभी पाठक—दोनों ब्राह्मण कायर थे, इसलिए हारे, सेनापति, यह बात नहीं है। इन पराजयोंके दूसरे कारण हैं। बिना मनन किये वे समझमें नहीं आ सकते। दोनों राजाओंकी सेनाने देशके लिए नहीं, पर राजाके लिए युद्ध किया था, और जैसे ही दोनों राजाओंके हाथी बिगड़कर युद्ध-क्षेत्रसे भागे, वैसे ही सेनाके पैर उखड़ गये। फिर प्रजाका उन युद्धोंमें कोई हाथ नहीं था। एक बात और थी। मुहम्मद कासिम और मुहमूदके सदृश इन सेनाओंका कोई कुशल कर्णधार भी नहीं था।

चण्डपीड—और पृथ्वीराज, जयचन्द तथा परमालदेवकी हार क्यों हुई ?

सुरभी पाठक—अन्तिम दो कारणोंसे—प्रजाका युद्धमें कोई हाथ न रहना और योग्य सेनापतियोंका अभाव; यहाँ एक कारण और बढ़ गया—आपसकी फूट। क्या तुम समझते हो कि पृथ्वीराज और परमालदेवके आपसी युद्ध न होते, साथ ही जयचन्द और पृथ्वीराजकी पारस्परिक शत्रुता न होती तो शहाबुद्दीन दिल्ली जीत सकता था ?

चण्डपीड—अमुक अमुक स्थिति न होती तो यह होता, यह तो कल्पनाकी बात हुई; प्रत्यक्षमें क्या हुआ सो देखिए।

सुरभी पाठक—जो कुछ अन्य स्थानोंमें हुआ, वही यहाँ होगा, यह तो मैं नहीं मानता। (विजयसिंह देवसे) महाराज, चण्डपीड तो अभी पाँच वर्षसे महाकोशलके महासेनापति पदपर आसीन हुए हैं। इनके पिताके पश्चात् मेरी ही सम्मतिसे आपने इन्हें यह पद दिया है। इनके पूर्व, इनके पिता और मैं, दोनों मिलकर महामंत्री और महासेनापतिका कार्य करते थे। आपकी प्रजामें महाकोशलके प्रति अनुराग और उसके लिए बलिदानके भावोंको हम दोनोंने भरा है। आपके पास वेतन पानेवाली बहुत बड़ी सेना नहीं है, पर आज इतना वृद्ध होनेपर भी मैं आपकी प्रजाके सारे युवकोंको भटोंका कार्य करनेके लिए एकत्र कर सकता हूँ। युद्धका शंख फुँकते ही और राजस्थानीयों, भुक्तपतियों, विषय-पतियों, अक्षपटलिकोंके पास सूचना जाते ही प्रत्येक जन-पद, भुक्त, विषय और ग्रामसे सैकड़ों और सहस्रोंकी संख्यामें भट एकत्रित हो सकते हैं, जो अपनी मातृभूमिके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेके लिए प्रस्तुत होंगे। फिर वे केवल आर्य ही न होंगे, इस

देशके मूलनिवासी अनार्य भी होंगे। उनसे भी स्वर्गीय महासेनापतिका और मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। उन मूल-निवासियोंमेंसे अनेक भट और अधिकारी सेनामें रहते थे, वरन् स्वर्गीय कलचुरि-सम्राटोंकी सफलताका यह एक प्रधान कारण था। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि परम भट्टारकको इस स्वातंत्र्य-रक्षाके महान् यज्ञमें अवश्य सफलता मिलेगी। हाँ, एक बात अवश्य है। उस सेनाका संचालन जिसे मैंने ही महासेनापति बनवाया था—उसकी बातोंसे स्पष्ट हो गया कि—वह नहीं कर सकता। इस सेनाका संचालन महाकोशलमें केवल एक व्यक्ति कर सकता है और वह वही यहाँका मूलनिवासी गोंड यदुराय है, जिसे श्रीमान्‌ने निर्वासित कर दिया है। उसका पता लगवाकर उसे बुलवाना होगा।

विजयसिंह देव—(क्रोधसे) महामंत्रीजी, अब तक आपकी बातोंको मैं बड़ी शान्तिसे सुनता रहा। आप मेरे पितामहके सामनेसे महामंत्री हैं। आपने मुझे गोदमें खिलाया है, शिक्षा दी है, इसलिए मैंने आपकी असह्य बातोंको भी सहन किया। आज आपका भरी सभामें आकर सभाको इस प्रकार भंग कर देना उद्दण्डताकी चरम सीमा थी, पर फिर भी मैंने आपसे कुछ नहीं कहा, किन्तु अब जो कुछ आप कहेंगे उसे सुनना मेरी सहन-शक्तिके बाहर है। मेरे द्वारा निर्वासित किये हुए उस दुष्टके प्रति आपकी इस प्रकारकी सहानुभूति! एक निर्वासित व्यक्तिको महा-बलाधिकृत बनानेका प्रस्ताव! वह अकुलीन गोंड यदुराय इस कुलीन क्षत्रिय-राज्यकी रक्षा करेगा! वह पतित हमारी महा-कोशलकी उन्नत सेनाका संचालन करेगा! एक मेरे ही कुलका नहीं, क्षत्रियोंके छत्तीसों कुलोंका यह अपमान है।

सुरभी पाठक—(धीरे धीरे) परम भट्टारकने मेरी उद्दण्डताओंको जिस प्रकार सहन किया, उसके लिए यह किंकर श्रीमान्‌का अनुग्रहीत है, परन्तु मेरे किसी भी कार्यसे राज्य अथवा राज्य-वंशकी मान-मर्यादामें यदि कोई भी क्षति पहुँची हो तो मैं दोषी हूँ। रहा राज्यकी रक्षाका प्रश्न, सो राज्यकी रक्षा उसे विदेशियोंके हाथ बेच देनेवाले, अपनेको कुलीन कहनेवाले (चण्डपीडकी ओर संकेत कर) ये क्षत्रिय अब नहीं कर सकते। जिस चण्डपीडकी सम्मतिसे परम भट्टारक शहाबुद्दीन गोरीके माण्डलिक बनने जा रहे हैं वह राज्यकी क्या मान-मर्यादा रखेगा ?

विजयसिंह देव—वह यह कहाँ कहता है और कहाँ कहता हूँ मैं ? मैं तो अनुभव कर रहा हूँ कि इस समय राज्यकी स्वतंत्रताकी रक्षाका प्रयत्न छोटी आपत्तिके स्थानपर बड़ी आपत्तिको निमंत्रण देना है। जब दिल्ली-पाति पृथ्वीराज और कान्यकुब्ज-पति जयचन्द देशको स्वतंत्र न रख सके तो हम क्या कर लेंगे ?

सुरभी पाठक—परम भट्टारक गांगेयदेव और कर्णदेवने वैसे ही कार्य किये थे जैसे उस समय आर्यावर्तके कोई नरेश न कर सके थे।

विजयसिंह देव—वह समय बीत गया और अब वैसा प्रयत्न दुःस्साहस होगा। फिर मैं वह करनेको प्रस्तुत नहीं हूँ। आप जानते हैं राज-निर्णय अन्तिम निर्णय है और उसे मैं कर चुका हूँ।

[सुरभी पाठक चुप होकर मस्तक झुका लेता है।
कुछ देरको सन्नाटा छा जाता है।]

विजयसिंह देव—अच्छा, राज-पत्र दीजिए महामंत्रीजी, (चण्डपीडसे)

महासेनापति, इसे तत्काल कुतुबुद्दीन ऐबकके पास भेजो और महामुद्राधिकृतसे पूछो कि मेरी आज्ञाके बिना यह पत्र महामंत्रीजीको कैसे दिया गया ?

[सुरभी पाठक वह पत्र नहीं देता और चुप रहता है ।]

विजयसिंह देव—(कड़ककर) क्या आप वह पत्र न देंगे ?

[सुरभी पाठक चुप रहता है ।]

विजयसिंह देव—(और भी जोरसे) राजाज्ञाकी यह अवहेलना !

[सुरभी पाठक चुप रहता है ।]

विजयसिंह देव—(गरजकर) क्या मुझे आपको महामंत्री पदसे च्युत करना पड़ेगा ?

[सुरभी पाठक चुप रहता है ।]

विजयसिंह देव—(बहुत जोरसे) क्या मुझे आपका अपमानकर आपको बन्दी बनाना होगा ?

सुरभीपाठक—(खड़े होकर भावपूर्ण शब्दोंमें) परम भट्टारक, मैं सोच रहा था कि मैं क्या उत्तर दूँ । महाराज, आपका और आपके वंशका लवण मेरे रोम रोममें भिदा हुआ है । (हाथ बढ़ाकर और कँपाकर) इस शरीरकी अस्थियाँ, मांस और रुधिर श्रीमान्‌के अन्नसे ही पुष्ट होकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं । (दाढ़ीपर हाथ फेरकर) इस वृद्धावस्था तक कभी मैंने परम-भट्टारककी आज्ञाके एक वाक्यका और एक वाक्य क्या, एक शब्द, एक अक्षर और मात्राका भी उल्लंघन नहीं किया । आपही की नहीं, आपके पिता और पितामहकी भी कोई बातको कभी नहीं टाला, परन्तु श्रीमान्, आपकी और आपके वंशकी

अपेक्षा मातृभूमिका मुझपर अधिक ऋण है। कुतुबुद्दीनके साथ युद्ध न हो, इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। मैं तो जिस छोटी-सी कुटीमें आज रहता हूँ, जैसा भोजन करता हूँ और जैसा वस्त्र पहिनता हूँ वैसा ही सदा रहूँगा। महामंत्री रहूँगा तो भी वैसा ही रहूँगा; परन्तु मातृभूमिकी स्वाधीनता सुरभी पाठकके रहते न जायगी। वह विन्ध्य पर्वत, वह नर्मदा नदी, जिसे अब तक शक एवं हूण सैनिक और गजनी एवं गोरीके म्लेच्छ भट छूकर अपवित्र नहीं कर सके हैं, सुरभी पाठकके रहते, फिर भी, विदेशियोंद्वारा न छुये जा सकेंगे।

विजयसिंह देव—(क्रोधसे) तो आप राज्यसे विद्रोह करते हैं?

सुरभी पाठक—यदि इसका अर्थ विद्रोह है तो वही हो।

विजयसिंह देव—(और भी क्रोधसे) तब तो आपका स्थान महादण्डनायकका न्यायालय और दण्डपाशिक एवं दण्डकका कारागार है। (चण्डपीडसे क्रोधित होकर) महासेनापति चण्डपीड, मैं सुरभी पाठकको सान्धिविग्रहिक महामात्यके पदसे पदच्युत कर वह पद तुम्हें देता हूँ। सुरभी पाठकको बन्दी करो।

चण्डपीड—जो आज्ञा (जोरसे) चाटगणो!

[चार चाटोंका प्रवेश]

चण्डपीड—सुरभी पाठकको बन्दी करो।

सुरभी पाठक—(गरजकर) सावधान चाटो, यदि आगे बढ़े तो....। सुरभी पाठकको बन्दी करना सहज नहीं है।

[चाट, राजा और चण्डपीडकी ओर देखते हैं। सुरभी पाठकका हाथके कागजको फाड़कर फेंकते हुए शीघ्रतासे प्रस्थान। परदा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—चण्डपीडके प्रासादकी दालान

समय—रात्रि

[दालानके पीछेकी रँगी हुई भित्ति दिखती है, जिसमें कोई द्वार इत्यादि नहीं है। दोनों ओर कुंभी और भरणीसे युक्त स्तंभ हैं। चण्डपीडका प्रवेश। वह बेचैनीसे इधर उधर टहलता है। बीच बीचमें ठहरकर कुछ सोचने लगता है और फिर टहलने लगता है।

[देवदत्तका प्रवेश]

देवदत्त लगभग तीस वर्षका गेहुँए रंग और साधारण कदका साधारणतया सुन्दर मनुष्य है। छोटी छोटी मूँछें हैं। शरीरपर कवच और सिरपर शिरस्त्राण है। पैरमें चर्मके जूते पहने है। दाहिनी ओर पीठपर तरकश और बाँई ओर कन्धेपर धनुष है। धनुषके नीचे कमरपट्टेमें खड्ग झूल रहा है। सामने कमरपट्टेमें छुरिका बँधी है। पीठपर बीचमें ढाल बँधी है और दाहिने हाथमें ऊँचा शल्य लिये है। देवदत्त शल्यको मस्तकपर लगा चण्डपीडका अभिवादन करता है। चण्डपीड सिर झुकाकर अभिवादनका उत्तर देता है।]

देवदत्त—श्रीमान्, वे नहीं पकड़े जा सके।

चण्डपीड—(आश्चर्यसे) क्या कहा? वह नहीं पकड़ा जा सका?

देवदत्त—(सिर झुकाकर) हाँ, श्रीमान्।

चण्डपीड—महाकोशलके युवक क्षत्रिय बलाधिकृत सौ अश्वारोहियोंके साथ एक वृद्ध ब्राह्मणको बन्दी नहीं कर सके?

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्।

चण्डपीड—क्यों, क्या चाटोंके समान सेनाके भटोंने भी धोखा दिया? क्या उन्होंने भी उसे बन्दी करना अस्वीकृत कर दिया?

देवदत्त—(सिर उठाकर) नहीं, यह बात नहीं हुई।

चण्डपीड—तब ?

देवदत्त—वे अपने पुरुषार्थसे बच गये।

चण्डपीड—(और भी आश्चर्यसे) एक वृद्ध सौ अश्वारोहियोंके बीचसे अपने पुरुषार्थसे बच गया ?

देवदत्त—हाँ, यही हुआ, श्रीमान्।

चण्डपीड—महाकोशलके बलाधिकृतके स्वयं रहते हुए ?

देवदत्त—(सिर झुकाकर) क्या कहूँ।

चण्डपीड—इस प्रकार अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित रहते हुए ?

[देवदत्त कोई उत्तर न दे सिर और भी झुका लेता है।]

चण्डपीड—हुआ क्या ?

देवदत्त—(सिर उठाकर) आश्चर्यजनक, महान् आश्चर्यजनक घटना हुई। ऐसी जैसी मैंने अब तक कभी नहीं देखी थी, श्रीमान्।

चण्डपीड—कैसी ? सारा वृत्तान्त बताओ।

देवदत्त—जब श्रीमानने मुझे सौ अश्वारोहियोंके साथ कुटीको घेरकर उन्हें बन्दी करनेकी आज्ञा दी, और हम लोग कुटीपर पहुँचे, तब चलनेको प्रस्तुत कसा हुआ घोड़ा उनकी कुटीके द्वारपर खड़ा था और वे बाहर निकलकर उसपर आरोहण करने ही वाले थे।

चण्डपीड—अच्छा, फिर ?

देवदत्त—हमें देखते ही वे खड़े हो गये। सीधे खड़े हुए, श्रीमान्, दोनों हाथ अपनी कटिपर रखकर, सीधे...

चण्डपीड—तुम तो उसके खड़े होनेका वैसा ही वर्णन करते हो मानो शिवजी गंगावतरणके लिए खड़े हों। (जोरसे हँस पड़ता है)

देवदत्त—हँसनेकी बात नहीं है, श्रीमान्, आपने यहाँ खड़े खड़े

ही उनके खड़े होनेकी ठीक ठीक उपमा दे दी। सचमुच वे उस समय गंगावतरणके लिए खड़े हुए शिवजीके समान ही दिखते थे। चाँदनीमें चमकते हुए उनके लम्बे लम्बे केशोंसे सचमुच शिवजीकी उस समयकी जटाओंकी ही उपमा दी जा सकती है।

चण्डपीड—मूर्खताकी पराकाष्ठा है।

देवदत्त—आपने वह दृश्य देखा नहीं, इसीलिए आप ऐसा कहते हैं, श्रीमान्।

चण्डपीड—अच्छा, अच्छा, सुन लिया, फिर क्या हुआ?

देवदत्त—दो पल पर्यन्त वे उसी प्रकार खड़े हुए एकटक हम लोगोंकी ओर देखते रहे....

चण्डपीड—और तुम लोग मिट्टीकी मूर्तियोंके समान उन्हें...

देवदत्त—श्रीमान्, सभी मन्त्र-मुग्ध-वत् हो गये थे।

चण्डपीड—और सब चाहे न हुए हों, पर तुम अवश्य हो गये थे। बिना तुम्हारी आज्ञाके वे बेचारे भटगण क्या कर सकते थे?

देवदत्त—वह दृश्य ही वैसा था, श्रीमान्।

चण्डपीड—अच्छा, आगे बढ़ो।

देवदत्त—दो पल उपरान्त उन्होंने कड़ककर कहा—तुम मुझे बंदी करने आये हो मूर्खो! सुरभी पाठकको बंदी करना सहज नहीं।

चण्डपीड—मूर्ख शब्दका उसने ठीक प्रयोग किया।

देवदत्त—उनके ये वाक्य हम सबोंको विद्युतकी कडकड़ाहटके समान ज्ञात हुए।

चण्डपीड—और चाहे किसीको ज्ञात न हुए हों, पर तुम्हें अवश्य हुए।

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्, वह स्वर ही ऐसा था। चारों ओरकी

विन्ध्यशिखरावलीमें उसकी प्रतिध्वनि हुई थी।

चण्डपीड—तुम्हारे मस्तिष्कमें हुई होगी; अच्छा फिर क्या हुआ?

देवदत्त—उसके पश्चात् वे उछलकर घोड़ेपर बैठ गये और उन्होंने अपना घोड़ा सर्पट छोड़ दिया।

चण्डपीड—और तुम लोग वैसेके वैसे खड़े रह गये?

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्, हम लोगोंने उनका पीछा किया।

चण्डपीड—परन्तु उन्हें पा नहीं सके, क्यों?

देवदत्त—नहीं, नहीं, धुआँधारके निकट उनके घोड़ेको भी घेर लिया।

चण्डपीड—फिर?

देवदत्त—फिर उन्होंने युद्ध किया। उस समय जब घूम घूमकर वे खड्ग चलाते थे, तब चमकती हुई चाँदनीमें उनके सिर और दाढ़ीके हिलते हुए बाल सिंहकी शटाके समान जान पड़ते थे। भास होता था मानो घोड़ेपर एक सिंह बैठ गया है, वह खड्ग चला रहा है और उसकी शटा हिल रही है।

चण्डपीड—यह तो काव्य-रचना हुई, घोड़ेपर सिंह नहीं बैठ सकता; अच्छा फिर क्या हुआ?

देवदत्त—युद्ध करते करते जब उन्हें बचावका कोई उपाय न दिखा तब वे घोड़ेसे उछलकर धुआँधारके प्रपातमें कूद पड़े।

चण्डपीड—(आश्चर्यसे चिल्लाकर) क्या धुआँधारके प्रपातमें कूद पड़ा?

देवदत्त—श्रीमान्, वही तो कहता हूँ। आश्चर्य, महाआश्चर्य-जनक घटना है। आप पूरी सुनें तो। मैंने कहा न कि जीवनमें

ऐसी चकित कर देनेवाली घटना कभी नहीं देखी।

चण्डपीड—और सुनना क्या है, धुआँधारमें कूदनेके पश्चात् वह मर गया होगा। उस प्रपातमेंसे कौन बच सकता है? समझ गया, तुम्हें उसे बन्दी करनेकी आज्ञा थी और वह मर गया, इसी लिए तुम इतने घबराये हुए हो; पर इसमें घबरानेकी कोई बात नहीं।

देवदत्त—नहीं, श्रीमान्, वे मरे नहीं।

चण्डपीड—(पैर पटककर जल्दी जल्दी) देवदत्त, या तो तुम आज विक्षिप्त हो गये हो, या तुमने कोई मादक द्रव्य खाया है।

देवदत्त—ये दोनों बातें नहीं हैं श्रीमान्, घटना ही ऐसी है।

चण्डपीड—(चिल्लाकर) कैसी घटना! क्या वह धुआँधारमें कूद-कर भी बच गया?

देवदत्त—बाल बाल, श्रीमान्, प्रपातके नीचे पानीके बहावमें मैंने अपनी आँखों उन्हें हाथोंसे तैरते देखा।

चण्डपीड—(जल्दीसे देवदत्तके निकट बढ़कर) और जब तुमने उसे तैरते हुए देखा तब उसपर बाण नहीं चलाया और न बाण चलानेकी भटोंको आज्ञा दी?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) बाण चलानेकी तो मुझे आज्ञा नहीं थी।

चण्डपीड—पर उसे भाग जाने देनेकी भी आज्ञा नहीं थी।

देवदत्त—यह तो ठीक है, श्रीमान्, किन्तु....

चण्डपीड—(बात काटकर) किन्तु परन्तुकी कोई बात नहीं है देवदत्त, वह तो बुद्धिकी बात है। जिस समय तुमने देखा था कि उसका हाथमें आना सम्भव नहीं है, उस समय उसपर बाण चलाना था। फिर वह समय तो ऐसा था जब तुम्हारे बाणोंसे रक्षा करनेका

भी उसके पास कोई साधन न था।

देवदत्त—परन्तु, श्रीमान्, उस समय यदि मेरे मनमें यह विचार भी उठता तो भी उस दिव्य मूर्तिपर मेरे हाथोंसे बाण चलना सम्भव न था।

चण्डपीड—यह भावुकता है। राजनीतिमें भावुकताको कोई स्थान नहीं है। यदि तुमसे बाण न चलते तो साथके भटोंको आज्ञा देनी थी कि वे बाण चलाते।

देवदत्त—वह भी मैं नहीं कर सका, श्रीमान्। बात तो यह है कि वह विचार ही मेरे मनमें नहीं उठा। फिर यदि मैं भटोंको ऐसी आज्ञा देता भी, तो मुझे तो बहुत सन्देह है कि वे बाण चलाते।

चण्डपीड—यह तुम्हारा निरर्थक सन्देह है। और यदि वे न चलाते तो मेरा उन्हें स्मरण दिलाकर, कड़ककर, उन्हें कहना चाहिए था कि उन चाटोंके समान, जिन्होंने उसे बन्दी नहीं किया उन भटोंका भी वध निश्चित है। (कुछ ठहरकर) अच्छा फिर?

देवदत्त—फिर क्या, श्रीमान्, कुछ देरमें वे आँखोंकी ओट हो गये।

चण्डपीड—और तुम लोग अपना-सा मुँह लेकर चले आये, क्यों?

देवदत्त—फिर हम लोग और क्या करते?

चण्डपीड—क्यों? चारों ओर घूमकर उसका पता लगाते, वह सदा पानीमें थोड़े ही रहता।

देवदत्त—उस घनघोर वनमें रात्रिके समय? दिनमें ही वहाँ हाथको हाथ नहीं सूझता, रात्रिको हमें उनका पता क्योंकर लगता, श्रीमान्?

चण्डपीड—(लम्बी साँस ले और कुछ ठहरकर) जो कुछ हुआ सो हुआ। अभी तो आखेट हाथसे निकल ही गया, पर कहाँ जाता है? प्रात:काल होनेमें अब बहुत थोड़ा समय है; अभी पता लगवायेंगे। पर, देवदत्त, इस घटनासे तुम्हारी बड़ी हानि हुई।

देवदत्त—(सिर नीचा कर हाथ जोड़) जैसा श्रीमान् समझें।

चण्डपीड—तुम्हें कदाचित् ज्ञात नहीं है कि मैं आज रात्रिको महामात्य बना दिया गया हूँ। मैं बहुत शीघ्र परम भट्टारकसे तुम्हें महासेनापति बनवानेवाला था।

देवदत्त—(गिड़गिड़ाकर) फिर, श्रीमान्, एक दिनकी घटनाके कारण मेरी अब तककी समस्त सेवाओंपर पानी फिर गया?

चण्डपीड—वह घटना ही ऐसी है।

देवदत्त—मैं तो स्वयं कहता हूँ कि आश्चर्य, महान् आश्चर्य-जनक घटना है। किसीने अकेले किसीको सौ अश्वारोहियोंसे युद्ध करते देखा है! किसीने किसीको धुआँधारके प्रपातमें कूदते और इतने पर भी न मरते हुए सुना है! सारे सैनिक साक्षी हैं, श्रीमान्।

चण्डपीड—यही अन्तिम एक ऐसी बात है, जिससे तुम्हारा अपराध क्षमा किया जा सकता है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, मैं यत्न करूँगा, पर इसके बदलेमें तुम मेरे लिए क्या करोगे?

देवदत्त—(जल्दीसे) आपने जब भी जो कुछ करनेको कहा है, क्या इस किंकरने उसे सदा ही करनेका यत्न नहीं किया है?

चण्डपीड—(देवदत्तके और निकट जाकर धीरेसे) देखो देवदत्त, तुम भी इसी कलचुरि वंशके हो और मैं भी।

देवदत्त—अवश्य।

चण्डपीड—परम भट्टारक अब वृद्ध हो चले हैं, उनके कोई पुत्र नहीं है।

देवदत्त—सचमुच बड़े खेदकी बात है, श्रीमान्।

चण्डपीड—नहीं, इसमें एक हर्षकी बात भी है, वही तो तुमसे कहनी है।

देवदत्त—अच्छा!

चण्डपीड—उनकी राजकुमारी रेवासुन्दरीसे जिसका विवाह होगा वही इस सिंहासनपर बैठेगा।

देवदत्त—यह तो ठीक ही है।

चण्डपीड—वह मूर्ख, अकुलीन, गोंड़ यदुराय इसीका यत्न कर रहा था। उसने रेवासुन्दरीको भी मुट्ठीमें ले लिया था, पर वह बात कभी सम्भव थी?

देवदत्त—तभी तो वह बलाधिकृतोंसे योग्य होनेपर भी निकाला गया श्रीमान्।

चण्डपीड—अवश्य। जो कुल कुलीनताके लिए सारे भारतमें प्रसिद्ध है, जिसे कुलीनताका ही सबसे अधिक गर्व है, उस कुलकी राज-कन्याका एक अकुलीन गोंड़से विवाह हो, यह कल्पना करनेकी भी बात नहीं है।

देवदत्त—कभी नहीं, श्रीमान्।

चण्डपीड—तुम्हारी पत्नी विन्ध्यबालाकी रेवासुन्दरीसे अत्यधिक मित्रता है; रेवासुन्दरी उनकी सम्मतिका भी बहुत आदर करती है।

देवदत्त—यह तो है, श्रीमान्, राजकुमारी उसपर बड़ी कृपा रखती हैं।

चण्डपीड—यदि विन्ध्यबाला रेवासुन्दरीको शनैः शनैः समझाकर मुझसे विवाह करनेके लिए तैयार कर दें, तो मेरे सिंहासनासीन होते ही तुम सान्धिविग्रहिक महामात्य होगे।

देवदत्त—अच्छा।

चण्डपीड—हम कुलपुत्रोंको ही तो इन पदोंको ग्रहण करनेका अधिकार है। एक गोंड़ यत्न करता था, वह निकला। कुछ पीढ़ियोंसे महामंत्रीपद इन भुखमरे ब्राह्मणोंको दिया जाने लगा था, वह ब्राह्मण भी निकला। मुसलमानोंकी एक नवीन आपत्ति आ गई थी, पर मैंने परमभट्टारकको कुतुबुद्दीन ऐबककी इच्छानुसार ही उससे सन्धि करनेके लिए राजी कर लिया है। तुम मुझे यदि इस कार्यके करनेका वचन दो, तो मैं तुम्हें शीघ्र ही महासेनापति, महाबलाधिकृत बनवा दूँगा।

देवदत्त—वचन मैं क्या दूँ, श्रीमान्, क्या मुझपर विश्वास नहीं है? आजतक जो जो आज्ञाएँ आपने दी हैं उन सबको अक्षरशः पालन करनेका मैंने यत्न किया है। इसके लिए भी मैं पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

चण्डपीड—(हर्षसे) तो तुम समझ लो कि तुम महासेनापति हो गये।

[देवदत्त शल्यको सिरसे लगाकर अभिवादन करता है]

चण्डपीड—अच्छा देखो, अब प्रातःकाल होनेमें विलम्ब नहीं है। प्रातःकाल पचास अश्वारोहियोंको धुआँधारके वनमें भेजो कि सुरभी पाठकका पता लगायें।

देवदत्त—जो आज्ञा।

[देवदत्त पुनः शल्यको सिरपर लगा चण्डपीडको आभिवादन कर एक ओरको जाता है। चण्डपीडका दूसरी ओर प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—बन्दर-कूदनी

समय—रात्रि

[बीचमें नर्मदा बह रही है। दोनों ओर ऊँची ऊँची संगमर्मरकी श्वेत चट्टानें हैं। चट्टानोंके बीच नर्मदाका जल चाँदनीमें चमक रहा है। एक छोटी-सी नावपर रेवासुन्दरी और विन्ध्यबाला बैठी हुई धीरे धीरे नावको खे रहीं हैं। विन्ध्यबाला गा भी रही है। रेवासुन्दरीकी अवस्था १५ वर्षकी है। वह गौर वर्णकी परम सुन्दर युवती है। गुलाबी रंगकी कौशेय वस्त्रकी साड़ी पहिने और वक्षःस्थलपर आसमानी रंगका कौशेय वस्त्र बाँधे है। दोनों वस्त्रोंपर सुनहरी काम है। रत्नजटित आभूषण भी वह धारण किये है। विन्ध्यबालाकी अवस्था लगभग २५ वर्षकी है। वह भी सुन्दर है। उसकी वेश-भूषा भी रेवासुन्दरीके समान ही है। साड़ीका रंग पीत और वक्षःस्थलके वस्त्रका रंग बैंगनी है।]

गान

शशि कैसे मुसकाये आली !
मृदु उरमें तम ज्वार छिपा, यह इतना मधु बरसाये।
सुखसागरमें डूब डूब जब मेरा मन थक जाये।
लहर लहरपर सजल तापसे अपने अंग सुखाये।
विधुके धवल हासकी सिहरन, जग कम्पित कर जाये।
नलिनीके लोचन-पत्रोंमें, हिम-आँसू भर आये।
मनका ताप उठे, शीतलता तनकी, शशि बिखराये।
वाष्प ज्वारसे, चन्द्रकान्तका, उपल हिया गल जाये।
सुन्दर तनकी हृदय-शून्यता जब कलंक कहलाये,
मेरा मन उस इन्दु-शशक-सा भीत भीत हो आये।

रेवासुन्दरी—(गान पूर्ण होनेपर) आज एकादशी है विन्ध्यबाला,

पूरा एक मास हुआ। आज ही के दिन वे यहाँ आये थे और उसके दूसरे ही दिन वे निर्वासित कर दिये गये; क्यों ?

विन्ध्यबाला—हाँ, राजकुमारी, दूसरे ही दिन।

रेवासुन्दरी—और उस दिन तुमने यही गान गाया था, जो आज गाया।

विन्ध्यबाला—हाँ, राजकुमारी, यही गान था।

रेवासुन्दरी—वही एकादशी है। (ऊपर देखकर) उसी प्रकारका चन्द्र है। (चट्टानोंको देखकर) ये संगमर्मरकी चट्टानें भी उसी प्रकार चमक रहीं हैं। (पानीको देखकर) इस नर्मदामें वैसी ही तरंगें उठ रहीं हैं और प्रत्येक तरंग उसी प्रकार ज्योत्स्नामें चमक चमककर अठखेलियाँ करती है, पर सखि....

विन्ध्यबाला—मन तो वैसा नहीं है। विरहके कारण मनकी और ही दशा होनेसे सारा दृश्य वैसा होते हुए भी वह भिन्न प्रकारका दिख रहा है; क्यों ?

रेवासुन्दरी—ठीक कहती हो, विन्ध्यबाला, महाकोशलका यह दृश्य संसार-भरमें प्रसिद्ध है, मुझे भी बड़ा प्रिय था, परन्तु आज तो उलटा क्लेश दे रहा है।

विन्ध्यबाला—कारण जानती हो ? (फिर गाती है।)

गान

हँसतेसे जगमें सजनी !
आ झाँकी उर रजनी,
उमगी-सी लहरें ठिठकीं,
मृदु मलय पवन सिहरी।

खिली चन्द्रिका सकुच ओढ़ती,
मनकी छाँह घनी ।
हँसती गिरिमाला लज्जित-सी,
आलि, निष्कम्प खड़ी ।
सुमन-सेजपर सुरभि लोटती,
स्मृतियाँ बाण बनी ।
उन्मन मनने मधु-राकामें
कल झनकार सुनी ।
आज निशाके उरमें प्रतिध्वनि,
गूँजी गरलसनी ।

रेवासुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) ठीक है, सखि ।

विन्ध्यबाला—पर क्या करोगी, राजकुमारी ?

रेवासुन्दरी—धीरे धीरे वह भी निश्चय कर रही हूँ ।

विन्ध्यबाला—मुझे न बताओगी ?

रेवासुन्दरी—यह कभी सम्भव है ? मार्गप्रदर्शिका तो तुम्हीं होगी, जिस प्रकार सदा रही हो; पर पूरा विचार तो कर लूँ । कार्य रूपमें परिणत तो कोई बात तुम्हारी सम्मतिके बिना हो ही नहीं सकती । (कुछ ठहरकर) क्यों सखि, वे अकुलीन कहे जाते हैं, पर इन क्षत्रियोंमें और उनमें क्या अन्तर है ?

विन्ध्यबाला—कुछ तो नहीं दिखता ।

रेवासुन्दरी—वरन् शारीरिक और मानासिक दोनों ही दृष्टियोंसे इन क्षत्रियोंसे तो वे कहीं अच्छे हैं । कैसा सुन्दर उनका शरीर है और कैसे उच्च भाव !

विन्ध्यबाला—यह भी सत्य है।

रेवासुन्दरी—उन्हें इसलिए निर्वासित किया गया है न कि वे अकुलीन हैं और मेरे संग उनका रहना—यह परम भट्टारककी कुल-मर्यादाके विरुद्ध समझा गया ?

विन्ध्यबाला—हाँ, और कोई दोष तो उनमें नहीं सुना गया; वरन् यह सुना जाता था कि सेनाके कार्यमें उनकी अद्भुत और तीव्र गति थी,—ऐसी कि जैसी किसी भी बलाधिकृतकी नहीं थी।

रेवासुन्दरी—और इतनेपर भी वे साधारण भट थे ?

विन्ध्यबाला—कुलीनताके गर्वसे गर्वित कलचुरियोंके राज्यमें कोई पद अकुलीनोंको मिले, यह कैसे हो सकता है ?

रेवासुन्दरी—(ऊपर देखकर) विन्ध्यबाला चन्द्रमाकी ये किरणें दोनों ओरकी चट्टानोंको भी उसी प्रकार आलोकित करती हैं, जैसे मनुष्य-शरीरको।

विन्ध्यबाला—ठीक उसी प्रकार, राजकुमारी।

रेवासुन्दरी—फिर क्या गुणोंका आलोक कुलीनों और अकुलीनों दोनोंके अन्तःकरणोंको समान रूपसे प्रकाशित न करता होगा ?

विन्ध्यबाला—मैं, नहीं कहाँ कहतीं हूँ ? मैं तो इस वंशकी परम्परागत रीति तुम्हें बता रही हूँ।

रेवासुन्दरी—(ऊपर देखकर) इस चन्द्रमें, इसके कुटुम्बी तारागणोंमें, (चट्टानोंको देखकर) इन चट्टानोंमें, (चट्टानोंके ऊपर देखकर) इन चट्टानोंके ऊपरके वनमें (नीचे जलको देखकर) और इस नर्मदाके जलमें कोई कुलीनता अकुलीनताका भेद नहीं दिखता।

विन्ध्यबाला—सत्य है, राजकुमारी।

रेवासुन्दरी—समस्त सृष्टिके पदार्थ एक दूसरेके साथ प्रेमसे निवास करते हुए दिखाई देते हैं। वह चन्द्र अपनी शीतल किरणोंका सुख सभीको पहुँचाता है। यह नर्मदा अपने निर्मल नीरसे सभीको प्रफुल्लित करती है। फिर मनुष्यने ही एक दूसरेके बीचमें भेद-भावकी खाई क्यों खोद रक्खी है ?

विन्ध्यबाला—इसीलिए तो मनुष्य दुखी है, राजकुमारी, उसके सारे दुःखोंका मूल यह भेद-बुद्धि ही है।

रेवासुन्दरी—मुझे तो आज ऐसा भासता है, सखि, कि मनुष्योंको छोड़ यदि मैं शिलाखंडों, वृक्षों, उनके पल्लवों, पुष्पों और फलोंके साथ रहूँ तो कदाचित् जीवन अधिक सुखसे बीतेगा। (कुछ रुककर विचारते हुए) सखि, बहुत दिनोंसे जो निश्चय न कर सकी थी वह आज मैंने कर लिया। अभी तुमसे कहा था न कि मैं क्या करूँगी, सोच रही हूँ।

विन्ध्यबाला—हाँ, कहा था। क्या निश्चय किया ?

रेवासुन्दरी—मानव-समाजके इस भेद-भावका नाश ही मेरे जीवनका कार्य होगा।

विन्ध्यबाला—तब तो अपने कुलमें संघर्षसे ही इसका श्रीगणेश होगा !

रेवासुन्दरी—जो भी हो, अपने कुलके कुलीनता और अकुलीनताके इन भेद-भावोंका भी मैं नाश करूँगी।

विन्ध्यबाला—बड़ा दुस्तर मार्ग है, राजकुमारी।

रेवासुन्दरी—तुमने अनेक बार कहा ही है कि भले मार्ग सदा दुस्तर होते हैं और उन्हींको पार करना विशेषता है।

विन्ध्यबाला—हाँ, कहा तो है।

रेवासुन्दरी—सखि, यह परम-पवित्र रेवा और यह भृगुक्षेत्र साक्षी है। आजसे मृत्युपर्यन्त यही कार्य करते हुए यह जीवन व्यतीत होगा।

विन्ध्यबाला—कार्य तो तुमने उत्तम चुना राजकुमारी, पर संघर्ष, भारी संघर्षका सामना करना पड़ेगा।

रेवासुन्दरी—मार्ग-प्रदर्शिका तो तुम रहोगी ही।

विन्ध्यबाला—रहनेका प्रयत्न करूँगी। (कुछ ठहरकर) अच्छा तो अब एकादशीका नर्मदा-पूजन हो। राजप्रासादको चलना है न ? बहुत रात गत हो गई। यदुराय भी नहीं हैं कि इस पूजनमें अधिक विलम्ब लगाया जाय।

रेवासुन्दरी—क्यों सखि, मण्डलामें वे सुखपूर्वक तो हैं न ?

विन्ध्यबाला—इसका मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ।

रेवासुन्दरी—तुम्हें पता कैसे लगा कि वे मण्डलामें हैं ?

विन्ध्यबाला—बड़ी कठिनाईसे, क्योंकि वे वहाँ गुप्तरूपसे हैं।

रेवासुन्दरी—उनके दर्शन भी कभी होंगे ?

विन्ध्यबाला—उसका प्रबन्ध भी कर रही हूँ।

[नावमें रखी हुई एक रजतकी रकाबी विन्ध्यबाला निकालती है जिसमें पूजनकी सामग्री है। दोनों सखियाँ नर्मदापर कुंकुम और अक्षत छिड़क फूल चढ़ाती हैं। फिर कपूरसे आरती कर गाती हैं।]

रेवा, तेरा सुन्दर वाह।
बहा कठिन पर्वत-पथसे यह परम-पुनीत प्रवाह।
सुगम पंथ सब पांथ खोजते पर तूने तो खोज,
दुर्गमसे दुर्गम मगकी की, अति अद्भुत तव ओज।

चपल बालिका सम तू चलती कहीं चंचला चाल,
पर दो पग पश्चात् प्रौढता गहती है तत्काल ।
दो ही डग चलकर तुरन्त ही तजती वह भी वेष,
युवती-वत लुक छिप इठलाती, कह तो क्या उद्देश ?
इतनी मन्द कहीं मानो तू हुई परिश्रम क्लान्त;
पर फिर विकट वेगसे बहती कुछ ही पद उपरान्त ।
क्या तू अपने क्लान्त गमनको मान सखेद प्रमाद,
फिरसे वीर-वाहिनी होती निज पौरुष कर याद ?
बने कहीं हैं कलित कुण्ड अति जिसके तटपर नित्य,
वर वृक्षोंके सँग करती हैं ललित लताएँ नृत्य ।
अप अण्डज सारस, बक, चकवे, वन-विहंग बहु जाति,
नर्तन यह गायनयुत करते गा गा अगणित भाँति ।
गिरता कहीं प्रपात, धूमसम उड़ते उसके बिन्दु,
ये ही रजतकणोंवत होते जब उगता है इन्दु ।
धवल धवल चट्टानोंसे घिर धवल अमल जल-जाल,
होता स्थिर-सा यहाँ, मनो वह निर्मल मुकुर विशाल ।
ज्योत्स्नामें चट्टानें रूपी सिरको उठा स-गर्व,
कहता यह स्थल ' भूपर मुझमें स्वर्ग सुशोभित सर्व । '
सकल सरित सरिसे है तुझको शोभा मिली अपार,
कारण एक, कठिन पथ तूने किया ससाहस पार ।

[परदा गिरता है]

चौथा दृश्य

स्थान—विजयसिंह देवके राजप्रासादकी दालान

समय—रात्रि

[दालान वैसी ही है जैसी चण्डपीडके प्रासादकी थी। भित्तिका रंग उससे भिन्न है। विजयसिंह देव और चण्डपीडका प्रवेश।]

विजयसिंह देव—तो सुरभी पाठकका अब तक कोई पता नहीं लगा?

चण्डपीड—बहुत यत्न करनेपर भी नहीं लगा, श्रीमान्, पर अब भी मैं पता लगानेका पूर्ण प्रयत्न कर रहा हूँ।

विजयसिंह देव—और कुतुबुद्दीनके पास दूसरा सन्धि-पत्र लेकर दूत बिदा हो गया?

चण्डपीड—वह तो हो गया महाराज।

विजयसिंह देव—चण्डपीड, हम लोगोंने कार्यकी जो दिशा निश्चित की है वह मातृ-भूमिके लिए हितकर तो है न? मैं तुम्हें पुत्रवत् मानता हूँ। हृदयसे पूछकर ठीक ठीक तो कहो?

चण्डपीड—(गम्भीर होकर) मैंने एक बार नहीं, न जाने कितनी बार इस प्रश्नको केवल हृदयसे ही नहीं, किन्तु आत्मासे भी पूछा है, श्रीमान्।

विजयसिंह देव—अच्छा।

चण्डपीड—बिना आत्मासे पूछे ऐसी बातोंके सम्बन्धमें परम भट्टारकको कुछ सम्मति देना अपने इस जन्मको ही नहीं बिगाड़ लेना है, परन्तु मृत्युके पश्चात् नरकमें जानेकी भी तैयारी कर लेना है।

विजयसिंह देव—और तुम्हारी आत्मासे क्या उत्तर मिला?

चण्डपीड—सदा एक ही परम भट्टारक, कि हम लोगोंने जो कार्यकी दिशा निश्चित की है उससे मातृ-भूमिका सच्चा लाभ है। आवेशमें आकर कोई कार्य कर बैठना एक बात है और विचार कर कार्यकी दिशा निश्चित करना सर्वथा दूसरी बात, श्रीमान्।

विजयसिंह देव—कैसे चण्डपीड ?

चण्डपीड—देखिए, परम भट्टारक, मुसलमानोंका सामना इस समय कोई भी जाति नहीं कर सकती।

विजयसिंह देव—क्यों ?

चण्डपीड—उनके यहाँ एक नवीन धर्मकी उत्पत्ति हुई है। उस धर्ममें जो जातियाँ दीक्षित हुई हैं उनमें नवीन उत्साह है। एकताकी नवीन श्रृंखलासे वे बँधी हैं। भ्रातृ-भावके जितने उदार विचार आज उनमें हैं उतने संसारकी किसी भी दूसरी जाति या धर्ममें नहीं हैं महाराज।

विजयसिंह देव—तो यही कारण है कि पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओंकी दिग्विजयमें उन्हें सफलता मिल रही है।

चण्डपीड—इसमें सन्देह नहीं। फिर श्रीमान्, इस देशके धार्मिक-भाव तो बहुत ही पतित हो चुके हैं। आपसकी फूट और आपसकी मार-काटमें सारी शक्ति नष्ट हो चुकी है। जिस किसीने यहाँ मुसल्मानोंका सामना किया उसकी क्या दशा हुई ?

विजयसिंह देव—बहुत बुरी दशा हुई, इसमें संदेह नहीं।

चण्डपीड—दो ही मार्ग हमारे लिए थे, परम भट्टारक, एक तो हम उनसे किसी प्रकार सन्धि कर लेते, या अपनेको दूसरोंके समान

ही नष्ट करा देते। पहला विचारपूर्ण, बुद्धिमानीका मार्ग था और दूसरा मूर्खतापूर्ण आवेशका। हमने पहले मार्गका अवलंबन किया है।

विजयसिंह देव—तुम ठीक कहते हो, चण्डपीड, जब तुम मेरे सामने ये बातें कहते हो तब पूर्ण-रूपसे मेरी समझमें आ जाती हैं, परन्तु जहाँ मैं अकेला हुआ कि बार बार मेरे हृदयमें उठने लगता है कि मातृ-भूमिके प्रति मैं कोई अधर्म तो नहीं कर रहा हूँ?

चण्डपीड—इस प्रकारकी शंकाएँ सदा चित्तमें उठा करतीं हैं, परन्तु इनका दमन करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है।

विजयसिंह देव—और युद्धमें भी तो महान् अनर्थ होता।

चण्डपीड—इसमें कोई सन्देह है, महाराज। जिन महलोंमें महाकोशलकी ही नहीं, सारे भारतवर्ष और विदेशोंतककी सारी शिल्प-शक्ति लगा दी गई है, जिनके एक एक स्तम्भ, एक एक कुंभी, एक एक भरणी, एक एक झरोखेके बनानेमें उतनी ही तोलका सुवर्ण व्यय हो गया है, नष्ट हो जाते, उनका पता न लगता। (कुछ ठहरकर) वे उद्यान जिनमें देश-देशान्तरके वृक्ष ला लाकर और उनके जीवित रखनेके लिए उन देशोंकी मृत्तिका भी मँगा मँगाकर लगाये गये हैं, मरुभूमिमें परिणत हो जाते। (कुछ ठहरकर) वे महान् शिव-मन्दिर जहाँका वैभव कैलासके वैभवसे भी बढ़ा चढ़ा दिखाई देता है, जो नित्य नर्मदाके शुद्ध जलसे धो धोकर पवित्र रखे जाते हैं, जहाँ नित्य अखण्ड अभिषेक होता रहता है, भ्रष्ट कर दिये जाते। इतना ही नहीं, उनकी मूर्त्तियाँ जिन्हें यहाँकी प्रजा प्राणोंसे भी अधिक चाहती है, तोड़ दी जातीं। उन मन्दिरोंके सुवर्णके रत्न-जटित कलश जिन्हें ज्योतिषियोंने बड़े ध्यानसे मुहूर्त देख देखकर

मन्दिरोंपर चढ़ाया है, विदेशियोंद्वारा उतार लिये जाते। उनके उतरनेसे देशमें अवर्षण होता, दुष्काल पड़ते और प्रजा 'हा अन्न' 'हा अन्न' चिल्लाती हुई कुत्तों और बिल्लियोंकी मौत मरती।

विजयसिंह देव—बड़ी भीषण अवस्था हो जाती, चण्डपीड।

चण्डपीड—और, फिर, परम भट्टारक, न जाने कितनोंका रक्त बहता, न जाने कितने बालक तथा नारियाँ दास दासी बनाये जाते और कोषोंकी अपार लक्ष्मी लुट जाती।

विजयसिंह देव—हाँ, इसमें संदेह नहीं।

चण्डपीड—और, महाराज, एक बात और। वे सुन्दर सुन्दर तालाब,—फूले हुए कमलोंसे युक्त तालाब, जिनके लिए महाकोशल सारे संसारमें प्रसिद्ध है, और वे बन्दरकूदनी और धुआँधारके अद्भुत दृश्य जिनका अवलोकन करनेके लिए देश-देशान्तरके यात्री आते और श्रीमान्‌के राज्यकी यशोगाथाका सौरभ सारे संसारमें फैलाते हैं, विदेशियोंके हाथमें चले जाते।

विजयसिंह देव—कैसे सुन्दर दृश्य हैं!

चण्डपीड—संसारमें ऐसे दृश्य हैं ही नहीं, श्रीमान्।

विजयसिंह देव—और हार निश्चित थी?

चण्डपीड—सर्वथा। एकका भी तो नाम बता दीजिए, महाराज जो इनसे जीता है?

विजयसिंह देव—(कुछ सोचकर) हाँ, कोई तो नहीं दिखता।

चण्डपीड—फिर इतने लोमहर्षण काण्डके स्थानमें श्रीमान्‌को उन्हें देना क्या पड़ा, इसे भी देखिए। केवल शब्दोंमें महाराज उनके माण्डलिक कहलाएँगे और प्रतिवर्ष उन्हें कुछ दे देना पड़ेगा।

विजयसिंह देव—हाँ, है तो यही।

चण्डपीड—और वह भी बहुत दिनों तक नहीं।

विजयसिंह देव—(उत्सुकतासे) बहुत दिनों तक नहीं, यह कैसे?

चण्डपीड—परम भट्टारक जानते हैं कि गजनीका महमूद यहाँ बहुत दिनोंतक नहीं रहा। शहाबुद्दीन भी चला गया है और मैं नहीं समझता, वह लौटेगा। फिर कुतुबुद्दीन कितने दिन रहनेवाला है? इस विशाल देशपर, जिसके अन्तर्गत उनसठ तो मुख्य मुख्य राज्य ही हैं, और छोटे छोटे तो न जाने कितने हैं, कोई विदेशी राज्य कर ही नहीं सकता।

विजयसिंह देव—यह तो ठीक है।

चण्डपीड—बस जहाँ कुतुबुद्दीन गया और ये थोड़े भी निर्बल पड़े कि हम पुनः स्वतंत्र हो जायँगे। उस अवसरको ताकते रहना चाहिए, न कि आवेशमें आकर अपना और प्रजा दोनोंका सर्वस्व नष्ट करा देना चाहिए।

विजयसिंह देव—(प्रसन्न होकर) हाँ, हाँ, यह तुम्हारा कहना ठीक है। तो महाकोशल देश सर्वदा पराधीन न रहेगा और कलचुरि सदा माण्डलिक भी नहीं?

चण्डपीड—कदापि नहीं, महाराज। यदि इसकी सम्भावना होती तो मैं श्रीमानको यह सम्मति दे सकता था? वह सुरभी पाठक थोड़े ही कलचुरि कुलका है। कलचुरियोंका रक्त तो मेरी नाड़ियोंमें है, महाराज, इस वंश और इस देशकी प्रतिष्ठाका ध्यान जितना मुझे हो सकता है उतना उसे क्योंकर हो सकता है?

विजयसिंह देव—ठीक कहते हो, चण्डपीड!

चण्डपीड—यह तो, श्रीमान्, केवल राजनीतिक चाल है। राजनीतिमें हमारे प्राचीन आचार्योंने जिस साम-दाम, दण्ड-भेदका वर्णन किया है उसीसे कार्य करना चाहिए। हर समय वीरताका उपयोग तो भारी भूलके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। फिर एक बात और भी तो थी, महाराज।

विजयसिंह देव—क्या?

चण्डपीड—(विजयसिंह देवकी ओर देखते हुए धीरे धीरे) क्या कहूँ, मुखसे नहीं निकलता, परम भट्टारक।

विजयसिंह देव—(मुस्करा कर) समझ गया, समझ गया। तुम समझते हो मेरी दशा भी पृथ्वीराज, जयचंद और परमाल देवके समान होती।

चण्डपीड—(लम्बी साँस लेकर) कौन कह सकता है, महाराज, पर मैं तो उसकी कल्पना तक करता हूँ तो काँप उठता हूँ।

विजयसिंह देव—(चण्डपीडको गले लगाकर) ओह! तुम्हारा मुझपर इतना प्रेम, इतना स्नेह!

चण्डपीड—प्रेम और स्नेह क्या, परम भट्टारक, भक्ति कहिए। मेरे लिए तो राजा और पिता दोनों ही आप हैं। यह कुल हमारे लिए परम पूज्य है। मैं तो जब सोचता हूँ कि कोई युवराज नहीं है तो दुःखसे हृदय विदीर्ण होने लगता है।

विजयसिंह देव—इसकी मुझे चिन्ता नहीं है, चण्डपीड। तुम कुलपुत्र ही हो। मैं तुम्हें पुत्रवत् ही मानता हूँ। यह राज्य और रेवासुन्दरी तुम्हारी ही है।

चण्डपीड—(आश्चर्यसे) हैं! हैं! यह श्रीमान् क्या कह रहे हैं?

विजयसिंह—नहीं, नहीं, तुम जैसा दूरदर्शी और वीर पुरुष इस राज्यको मिलना ही सम्भव नहीं है। मेरे मनमें तो बहुत दिनोंसे यह बात थी, पर अवसर बिना कोई बात मुखसे नहीं निकलती।

चण्डपीड—नहीं, नहीं, परम भट्टारक, मैं इस योग्य नहीं। मैं तो राज-वंशका एक शुभचिन्तक किंकर मात्र रहना चाहता हूँ।

विजयसिंह देव—यदि तुम इसके योग्य नहीं तो फिर राज्यमें मुझे और कोई तो नहीं दिखता। क्या वह अकुलीन गोंड़ यदुराय इसके योग्य था?

चण्डपीड—वह तो कल्पना तक कुलीन कलचुरियोंके लिए अधर्मकी बात थी, परन्तु....

विजयसिंह देव—किन्तु परन्तु कुछ नहीं। मैं तो तुम्हारा बड़ा अनुग्रहीत हूँ कि तुमने मुझे ठीक समय सूचना देकर उस गोंड़को निर्वासित करा रेवासुन्दरी और मेरे इस प्राचीन कुलकी प्रतिष्ठा रख ली।

चण्डपीड—अनुग्रहकी क्या बात है, श्रीमान् वह तो मेरा धर्म था।

विजयसिंह देव—मैं अब वृद्ध हो चला हूँ, देशकी परिस्थिति भी इस समय अच्छी नहीं है, अतः अब मैं शीघ्र ही रेवासुन्दरीका विवाह और तुम्हारा युवराज-पदपर अभिषेक कर देना चाहता हूँ। मैंने महाधर्म्माध्यक्षसे इस कार्यके लिए योग्य मुहूर्त निकालनेको भी कह दिया है।

चण्डपीड—अच्छा, श्रीमान्। अभी तो नृत्यमें पधारें।

[विजयसिंह देवका प्रस्थान, पीछे प्रसन्नमुख चण्डपीड भी जाता है। परदा उठता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—देवदत्तकी भवनकी दालान

समय—सन्ध्या

[दालान अन्य दालानोंके समान ही है। भित्तिका रंग भिन्न है। विन्ध्यबाला एक आसंदीपर बैठी हुई गा रही है। एक रिक्त आसंदी उसीके निकट रखी है।]

गान

मोतीसे गूँथ रही है,
सन्ध्या रजनीकी अलकें।
झुक झुक पड़तीं, नलिनीके
नयनोंपर, अलसित पलकें।
कुछ थके विचार विहंगम
उड़ हृदय नीड़में आये।
कलरव-सा गूँज उठा सखि,
मन और न कुछ सुन पाये।
नयनोंने धुँधला-सा कुछ
उस दूर क्षितिजपर देखा।
शीतल-सी मधुर सुधामें,
झलकी कलङ्ककी रेखा।

[देवदत्तका प्रवेश। विन्ध्यबाला खड़े हो उसका स्वागत करती है। देवदत्त लड़खड़ाता-सा शयनपर बैठता है। विन्ध्यबाला भी बैठ जाती है।]

देवदत्त—प्रिये, आज तुम्हें एक बड़ा शुभ सम्वाद सुनाऊँगा। मैं महाकोशलका महासेनापति महाबलाधिकृत नियुक्त हुआ हूँ। इस

उत्तरदायित्वके कारण इतने अधिक भारका अनुभव करता हूँ कि तुमसे खड़े खड़े बात करना भी सम्भव न था।

विन्ध्यबाला—मैं तो इसे शुभ संवाद नहीं मानती।

देवदत्त—(आश्चर्यसे) तुम इसे शुभ संवाद नहीं मानतीं ?

विन्ध्यबाला—हाँ, नाथ।

देवदत्त—क्यों ?

विन्ध्यबाला—आप इस महासेनापति पदसे कौनसा महान् कार्य करनेका विचार कर रहे हैं ?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) क्या महाकोशलके महासेनापति-पदपर आसीन होना ही कुछ छोटा कार्य है ?

विन्ध्यबाला—बहुत छोटा। संसारमें पदोंको नहीं, पर कार्योंको महत्त्व है।

देवदत्त—कैसे ?

विन्ध्यबाला—महासेनापति ऐसे कार्य कर सकता है जो अत्यंत नीच हों और एक साधारण भट या चाट ऐसे कार्य कर सकता है जो अत्यन्त उच्च हों।

देवदत्त—(फिर कुछ सोचते हुए) तुम्हारी बातें कभी कभी ऐसी होती हैं, जो मेरी समझमें ही नहीं आतीं। महासेनापति, महाबलाधिकृतकी अपेक्षा भट या चाट उच्च कार्य कर सकता है, यह तो अद्भुत कल्पना है, विन्ध्यबाला।

विन्ध्यबाला—अवश्य कर सकता है, नाथ, इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है, वरन् मैं तो और आगे बढ़ती हूँ और कहती हूँ कि इन बड़े बड़े पदाधिकारियोंसे आज इस देशमें ऐसे कार्य हो रहे हैं कि जब

देशके इस कालका इतिहास लिखा जायगा उस समय ये पदाधिकारी, जो अपनेको देव-तुल्य समझते हैं, साधारण मानवोंके रूपमें भी नहीं, परन्तु राक्षसों और पिशाचोंके रूपमें चित्रित किये जायँगे। जो बेचारे भट और चाट हैं उनको तो नाम ले लेकर कोई न कोसेगा, क्योंकि उनके नाम इतिहासमें अंकित ही नहीं रह सकते, पर पदाधिकारी तो नाम ले लेकर कोसे जायँगे। इस समय इस देशमें कोई पद ग्रहण करना एक ऐसे महान् उत्तरदायित्वको लेना है, जिसे निभाना सहज नहीं।

देवदत्त—और तुम भी समझती हो कि मैं उस उत्तर-दायित्वको ग्रहण करनेके लिए योग्य नहीं हूँ?

विन्ध्यबाला—मैं तो उसके लिए आपको सर्वथा अयोग्य समझती हूँ।

देवदत्त—(क्रोधसे) पत्नीके द्वारा पतिका इस प्रकार तिरस्कार!

विन्ध्यबाला—नाथ, यह तिरस्कार नहीं है। भगवान् जानते हैं, मैं अपने लिए आपको कैसा मानती हूँ। मेरे आप आराध्य देव हैं। पत्नीके नाते मैं आपका पूजन करती हूँ। आपपर मेरी अगाध भक्ति है, प्रेम है, परन्तु यदि मैं आपको किसी बातके लिए अयोग्य पाती हूँ तो मेरा कर्तव्य और धर्म हो जाता है कि ठीक समयपर आपकी अयोग्यता और दोषका मैं आपको ज्ञान करा दूँ। मैं यदि यह न करूँगी तो आपके प्रति मेरा जो कर्तव्य है, धर्म है, उसका पालन न होगा। मैं आपको महाकोशलके महासेनापति-पदके सर्वथा अयोग्य मानती हूँ।

देवदत्त—कैसे?

विन्ध्यबाला—इस पदपर आसीन होनेके लिए इस समयकी स्थितिको देखते हुए आपने क्या कोई कार्य-दिशा पहलेसे सोच रक्खी है?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) कार्य-दिशाका क्या अर्थ है, विन्ध्यबाला? महासेनापतिके जो निश्चित कार्य हैं, मैं भी वे करूँगा।

विन्ध्यबाला—निश्चित कार्यसे आपका क्या अभिप्राय है?

देवदत्त—(झुँझलाकर) तुम्हारी बात ही मेरी समझमें नहीं आती।

विन्ध्यबाला—तभी तो कहती हूँ कि आप इस पदके योग्य नहीं।

देवदत्त—तुम्हारी, एक नारीकी, बात मेरी समझमें नहीं आई, इसलिए मैं महासेनापति पदके योग्य नहीं रहा?

विन्ध्यबाला—नहीं, इसलिए आप अयोग्य हैं, यह बात नहीं है, पर इसलिए आप योग्य नहीं हैं कि आपने इस समयमें भी बिना कोई कार्य-दिशा निश्चित किये इस पदको स्वीकार कर लिया है। नाथ, इस समय देशपर विदेशियोंका आक्रमण हो रहा है। आपके पड़ोसी-राज्यके प्रधान दुर्ग कालिंजरपर कुतुबुद्दीन ऐबकका अधिकार हो गया है। आपके नरेशने कुतुबुद्दीनका माण्डलिक होना स्वीकार कर लिया है। इस समय महाकोशलके सच्चे महासेनापतिका मार्ग, महासेनापतिके कार्योंकी जो एक निश्चित लकीर खिंची हुई है, उसपर चूनेकी चक्कीके बैलके सदृश चलना नहीं है। यही उसकी अयोग्यताकी चरम-सीमा है और इतिहासमें उसे कलंक लगानेकी कार्य-दिशा। आपको नारी मार्ग बता रही है, आपकी पत्नी मार्ग बता रही है। नारी नरसे निम्न कोटिकी होती है, पत्नी पतिसे बहुत छोटी वस्तु है, इन बातोंको आप अपने हृदयसे निकाल दीजिए। नारी और पत्नीकी स्थितिसे ऊपर उठकर मैं अपना श्रेष्ठत्व बतानेके लिए,

या आपपर धाक जमानेके लिए, यह सब नहीं कह रही हूँ, पर आपपर मेरी जो अगाध श्रद्धा है, भक्ति है, प्रेम है, उसके कारण आपसे यह निवेदन कर रही हूँ। मुझे बड़ा दुःख है कि आपने यह पद स्वीकार किया।

देवदत्त—बहुत कम पत्नियाँ अपने पतियोंके सौभाग्यपर इस प्रकार दुःख प्रकट करती होंगी।

विन्ध्यबाला—यह मेरा दुर्भाग्य है, और तो क्या कहूँ। (कुछ ठहरकर) अच्छा, आप अपने पदका कार्य तो महामंत्रीजीकी सम्मतिसे ही करेंगे न?

देवदत्त—नियमोंके अनुसार यह करना ही पड़ता है।

विन्ध्यबाला—क्यों? चण्डपीडने तो ऐसा नहीं किया, वरन् उसने तो सान्धिविग्रहिक महामंत्रीके कार्य तकमें हस्तक्षेप किया और अन्तमें स्वयं महामंत्री हो गया।

देवदत्त—आह! विन्ध्यबाला, वह दूसरी बात है।

विन्ध्यबाला—क्यों, दूसरी बात क्यों? वह भी तो महासेनापति था। दूसरी बात इसलिए है न कि वह बुद्धिमान् है, चतुर है?

देवदत्त—(कुछ सोचकर) अच्छा, अच्छा, अब तुम पकड़ी गईं। यदि तुम उन्हें इतना बुद्धिमान् और चतुर समझती हो तो फिर उन्हींकी सम्मतिसे मैं अपने कार्य क्यों न करूँ?

विन्ध्यबाला—वह बुद्धिमान् और चतुर है, इसमें सन्देह नहीं, पर उसकी बुद्धिमत्ता और चातुर्य देशके कल्याणमें न लगकर अपने स्वार्थ-साधनमें लगे हुए हैं। इस समय किसी दूसरे ऐसे व्यक्तिकी आवश्यकता है जो इस देशकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करे। चण्डपीडके कार्योंकी

ओर थोड़ी दृष्टि डालिए। उसने कितने बड़े बड़े कार्य कर डाले, पर वे कार्य किस प्रकारके हैं यह भी देखिए।

देवदत्त—कैसे ?

विन्ध्यबाला—यदुरायके सदृश वीर-शिरोमणि और कार्य-कुशल भटको उसने सेनासे निकलवा कर राज्यसे निर्वासित करा दिया। कुतुबुद्दीनसे सन्धि करनेपर महाकोशलके अधिपतिको उसका माण्डलिक बनानेके लिए तैयार कर लिया। महामंत्रीजीके समान बुद्धिमान् मनुष्यको पदच्युत कराके उनका पद स्वयं ले, उन्हें बन्दी करानेकी राजाज्ञा ले ली और अन्तमें आपको महासेनापति बनवा दिया, जिससे सेना भी उसीकी मुट्ठीमें रहे।

देवदत्त—इतना ही नहीं, विन्ध्यबाला, मैंने अभी अभी सुना है कि उनकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न हो परम भट्टारकने रेवासुन्दरीका विवाह भी उनसे कर उन्हें युवराज-पदपर बिठानेका निश्चय कर लिया है। इस समय उन जैसा बुद्धिमान् व्यक्ति महाकोशल देशमें नहीं है।

विन्ध्यबाला—(आश्चर्यसे) अच्छा, यह भी हो गया ? अब परम भट्टारक विजयसिंह देवके पश्चात् परम भट्टारक चण्डपीड देव महाकोशलके सिंहासनपर आसीन होंगे !

देवदत्त—और इस कार्यमें तुम्हारे सहयोगकी भी आवश्यकता है।

विन्ध्यबाला—एक नारीके सहयोगकी ?

देवदत्त—(मुस्कराके) तुम क्या यह समझती हो कि मैं नारियोंको हेय दृष्टिसे देखता हूँ ?

विन्ध्यबाला—आप ही नहीं सारा नर-समाज उन्हें हेय दृष्टिसे देखता है, पर आप यह न समझिए कि इससे मुझे तनिक भी क्लेश

होता है । नरोंका कार्य अपना कार्य करते जाना है और नारियोंका अपना । नर, नारियोंको हेय दृष्टिसे देखते हैं पर विशेषता यह है कि इतने पर भी नारियाँ उन्हें पूज्य-दृष्टिसे देखती हैं । पर जाने दीजिए इसे, यह बताइए कि चण्डपीडके शुभ-संकल्पमें मेरे किस प्रकारके सहयोगकी आवश्यकता है ?

देवदत्त—उन्होंने मुझसे इस सम्बन्धमें कई बार बातचीत की है, पर मैं तुमसे आज ही कहता हूँ ।

विन्ध्यबाला—कदाचित् इसलिए कि आज ही आप महासेनापति हुए हैं ?

देवदत्त—तुम तो सब कुछ समझ जाती हो । अच्छा, सुनो । परम भट्टारकका रेवासुन्दरीके साथ चण्डपीडके विवाह करनेका विचार, तो तुमने सुन ही लिया । पर चण्डपीडको सन्देह है कि रेवासुन्दरीका प्रेम यदुरायपर है । कलचुरियोंकी कुलीनताके कारण यदुरायसे रेवासुन्दरीका विवाह असम्भव है । रेवासुन्दरीको चण्डपीडसे विवाह तो करना ही पड़ेगा, पर वे चाहते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो वह अपनी इच्छासे यह विवाह करे । तुमपर रेवासुन्दरीका अत्यधिक प्रेम है, तुम्हारी सम्मतिका वह मूल्य भी बहुत करती है, अतः चण्डपीड चाहते हैं कि तुम रेवासुन्दरीको उनके साथ विवाह करनेके लिए राजी कर दो ।

विन्ध्यबाला—अब मुझे आपके महासेनापति बनाये जानेका एक और रहस्य ज्ञात हुआ । जो भाषण अभी आपने किया वह भी कदाचित् चण्डपीडने ही आपको रटाया होगा । इस भाषणका अर्थ आपने समझा ?

देवदत्त—क्या ?

विन्ध्यबाला—इसका यह अर्थ है, नाथ, कि मैं उस स्वार्थी और अधम चण्डपीडके साथ प्रेम और शुद्धताकी मूर्ति रेवासुन्दरीको विवाह करनेके लिए तैयार करनेमें दूतीका कार्य करूँ। क्यों ? मैं आपसे कहती हूँ, बार बार कहती हूँ, इसीलिए कहती हूँ कि आप मेरे पति हैं और आपके चरणोंमें मेरी भक्ति है। इस सारे काण्डमें आपका चित्र जितना नीच अंकित होगा उतना किसीका नहीं। चण्डपीड नीच देखनेपर भी बुद्धिमान् दिखेगा, चतुर माना जायगा, पर आपमें नीचताके अतिरिक्त मूर्खता भी दृष्टिगत होगी। आप उसके हाथकी कठपुतली जान पड़ेंगे, महासेनापति या महाबलाधिकृत नहीं। आप मुझे भी इस पापी षड्यंत्रमें घसीटना चाहते हैं। विन्ध्यबाला महाकोशलके महासेनापति, महाबलाधिकृतकी स्त्री, दूतीका कार्य करे और उससे यह कार्य करावे उसका पति ! नाथ, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ, कि आप इस पदको छोड़ दीजिए। महाबलाधिकृतके नाते दुष्कर्म करनेकी अपेक्षा साधारण भट या चाटके नाते सत्कर्म करना अधिक महत्त्वका है।

[परदा गिरता है]

छठा दृश्य

स्थल—मण्डलाका एक जंगली मार्ग

समय—संध्या

[निर्जन मार्ग है। दूरपर पहाड़ियाँ और नदी दिखती है। निकटमें वृक्ष और खेत हैं। यदुराय और नागदेव खड़े हैं। यदुरायकी अवस्था लगभग २५ वर्षकी है। वह ऊँचा पूरा गठे हुए शरीर एवं गोरे रंगका

परम सुन्दर युवक हैं। छोटी छोटी मूँछें और लम्बे बाल हैं। श्वेत रंगका अधोवस्त्र और उसी रंगका उत्तरीय धारण किये है। शरीरपर कोई आभूषण न होने पर भी सौन्दर्यमें कोई कमी नहीं दिखती। नागदेवकी अवस्था लगभग ३० वर्षकी है। वह साँवले रंगका परन्तु ऊँचा पूरा और गठे हुए शरीरका साधारण तथा सुन्दर व्यक्ति है। वह भी श्वेत अधोवस्त्र और उत्तरीय पहिने है। सुवर्णके कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ भी धारण किये है। लम्बे बाल, मूँछें और गलमुच्छे हैं। दोनों नंगे सिर हैं और दोनोंके पैरमें चर्मके जूते हैं।]

यदुराय—मित्र नागदेव, बार बार मेरे हृदयमें उठता है कि मुझे आश्रय देनेसे तुम्हारे ऊपर तो आपत्ति न आयगी ? तुम त्रिपुरीके माण्डलिक हो।

नागदेव—उस आपत्तिको सहन करनेके लिए मैं तैयार हूँ, मित्र, और फिर अभी तो तुम यहाँ गुप्त रूपसे हो।

यदुराय—सदा तो गुप्त न रह सकूँगा ?

नागदेव—तब तक उस आपत्तिका सामना करनेकी हम लोगोंकी सारी व्यवस्था हो जायगी।

[दोनों इधर उधर टहलने लगते हैं।]

यदुराय—क्यों, मित्र, तुम राजा हो, तुमने मुझे आश्रय दिया है। मुझे तुम्हें सदा आप, श्रीमान्, महाराज, भट्टारक आदि आदर-सूचक शब्दोंसे सम्बोधित करना चाहिए। मैं तुम्हें सदा तुम कहता हूँ, मित्र कहता हूँ, तुम्हारा नाम बिना किसी उपाधिके लेता हूँ। यह तुम मेरी धृष्टता तो नहीं समझते, तुम हृदयमें मुझसे अप्रसन्न तो नहीं होते ? (नागदेवके मुखकी ओर देखता है।)

नागदेव—यदुराय, क्या कहते हो ? ये बातें तुम्हारे कहने योग्य

हैं ? प्रिय बन्धु, प्यारे सखा, नागदेवके सर्वस्व, क्या अब तक तुमने नागदेवको नहीं पहिचाना ?

यदुराय—तुम्हें तो पहिचाना है, मित्र, परन्तु यह संसार ही इस प्रकारकी ऊँच नीच भावनाओंसे भरा हुआ है, इसलिए तुम्हारे लिए भी कभी कभी इस प्रकारके विचार उठने लगते हैं। किसी भी कारण जिन्हें उच्चपद प्राप्त है, या जो संयोगवश उच्च-कुलमें उत्पन्न हो जाते हैं, वे अपनेसे निम्न, या निम्न कहे जानेवाले, व्यक्तियोंको, चाहे वे निम्न व्यक्ति संयोगसे ही निम्न हों, विचारोंमें, और कृतियोंमें, उन उच्च और कुलीन कहे जानेवालोंसे कितने ही उच्च हों, हेय दृष्टिसे देखते हैं। यह ऊँच-नीच भावना मानव-समाजके रुधिरमें बहुत गहरी प्रविष्ट हो गई है।

नागदेव—मैं देखता हूँ, मित्र, मेरे निरंतर प्रयत्न करते रहने पर भी मैं तुम्हारे हृदयको सान्त्वना नहीं पहुँचा सका, शान्त नहीं कर सका।

यदुराय—कैसे कर सकोगे ? बन्धु, मेरे हृदयको जितनी ठेस पहुँची है, उस ठेससे जितना बड़ा घाव हुआ है, उसका भरना कुछ सहज काम है ? मेरी सारी दिवसकी चिन्ताओं और रात्रिके स्वप्नोंको जिस प्रकार एक ही प्रहारमें चूर चूर कर डाला गया है, मेरे न जाने कितनी मंजिलों ऊँचे मानसिक महलको जिस प्रकार एक ही आघातद्वारा धराशायी बना दिया गया है, वह तुम्हारी समझमें मेरे यत्न करनेपर भी नहीं आ सकता।

नागदेव—क्यों मित्र, मैं भी तो गोंड़ हूँ ?

यदुराय—इसी कारण औरोंकी अपेक्षा तुम्हारी समझमें अधिक आ सकता है, पर पूरा नहीं।

नागदेव—यह क्यों ?

यदुराय—क्योंकि तुमने एक गोंड़ राजाके घरमें जन्म लिया है, मेरे सदृश एक निर्धन गोंड़ कृषकके घरमें नहीं। फिर तुम अकुलीन गोंड़ोंके बीच ही रहे, मेरे समान कुलीन क्षत्रियों तथा ब्राह्मणोंके बीच नहीं, और तुम्हारा इन कुलीनोंने तिरस्कार कर कुछ बिगाड़ा भी नहीं है।

नागदेव—हाँ, यह तो ठीक है।

यदुराय—हम गोंड़ोंके लिए, जो इस प्यारी भूमिके आदि निवासी हैं, जिस भूमिके (सामनेके खेतों और मैदानोंकी ओर संकेतकर) इन लहलहाते खेतों और मैदानों, (सामनेकी ओर पहाड़ोंको लक्ष्यकर) इन सुन्दर पर्वतश्रेणियों और उनके वनों, वृक्षों, लताओं, पुष्पों और फलों, (दूरपर बहती हुई नर्मदाकी ओर संकेतकर) इन नदियों और झरनोंपर पहले हमारा अधिकार था, उन्हीं गोंड़ोंके लिए, इन ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके हृदयमें कैसे विचार हैं, उसे तुम नहीं जानते, मित्र।

नागदेव—कई बार तुमने कहा अवश्य है।

यदुराय—पर कहनेसे वह पूर्ण रीतिसे अनुमान नहीं किया जा सकता। ये हमें पशुओंसे भी निकृष्ट समझते हैं। हममें कितने ही उच्च गुण क्यों न हों, हम उनके राज्योंमें किसी भी उत्तरदायी पदपर आसीन नहीं हो सकते। हम कितने ही सुंदर क्यों न हों, हम उनकी कन्याओंसे विवाह नहीं कर सकते। हम कितने ही स्वच्छ क्यों न रहें, हमारा छुआ भोजन उनके खानेयोग्य नहीं रह जाता। इतना ही नहीं, यदि देशपर आपत्ति आवे, तो, यद्यपि हम उनकी अपेक्षा इस देशके पुराने निवासी हैं, हमें अपने देशकी रक्षा

करनेका भी अधिकार नहीं है। और हमारा दोष क्या है ? गोंड़-कुलमें जन्म लेना ही हमारा दोष है।

नागदेव—हाँ, यह तो है ही।

यदुराय—यह दैवाधीन है, केवल संयोगकी बात है। पुरुषार्थका प्रश्न ही नहीं है।

नागदेव—पुरुषार्थका इसमें क्या प्रश्न है ?

यदुराय—हमारे शरीरमें वैसी ही अस्थियाँ हैं जैसी अपनेको कुलीन कहनेवालोंमें हैं। हमारे शरीर भी इस देशकी मृत्तिकासे बने हैं, इसी देशके अन्न और जल-वायुसे पले हैं।

नागदेव—इसमें क्या सन्देह है।

यदुराय—और मस्तिष्कमें भी हमारे वैसे ही भाव उठते हैं जैसे कुलीनोंके; वरन् उनसे उच्च, क्योंकि सुनता हूँ कि अपनेको कुलीन कहनेवाले वे त्रिपुरीके क्षत्रिय ही देशको विदेशियोंके हाथ बेचनेवाले हैं। तो भी वे उच्च और हम पतित हैं! नागदेव, मैंने कहा न, तुम्हारा और इन कुलीनोंका इतना सम्पर्क नहीं रहा, तुम्हारा इन्होंने तिरस्कार भी नहीं किया, अतः तुम मेरे भावोंको पूर्ण रीतिसे नहीं समझोगे, गोंड़ होनेपर भी नहीं समझोगे, बन्धु, नहीं समझोगे।

नागदेव—फिर तुम्हें सान्त्वना क्यों कर हो ? तुम्हें व्यथित देखना तो मेरे लिए संभव नहीं है।

यदुराय—मेरी दुःख-सूचीमें यह एक और दुःख जुड़ गया है कि अपने आश्रयदाता, अपने अनन्य मित्रको भी मेरे कारण कष्ट है, पर क्या करूँ मेरा भाग्य ही ऐसा है।

नागदेव—मुझे अपना दुःख नहीं, पर तुम्हारा दुःख व्यथित

करता है, मित्र।

यदुराय—(कुछ ठहरकर) पर नहीं, मित्र, या तो हम इन कुलीनोंके समान बनेंगे; नहीं, नहीं, उनके समान उच्च बनकर उन्हें अपने समान पतित बनायेंगे, तभी तो प्रतीकार होगा, या इस देशको छोड़कर चले जायँगे। किसी देशमें अपमानित होकर रहनेकी अपेक्षा कारागृहमें रहना कहीं अच्छा है। पर क्यों? देशको छोड़कर क्यों चले जायँगे? कदापि नहीं, यह देश तो पहले हमारा ही था, अपना उत्कर्ष करेंगे और उनसे बदला लेंगे।

नागदेव—परन्तु, मित्र, कुछ भी करनेके पूर्व इस मानसिक-दशाको तो सुधार लेना होगा, नहीं तो कुछ भी करना असम्भव है।

यदुराय—पर, नागदेव, यह मानसिक दशा सुधरे क्यों कर? जब मैं निर्वासित किया गया, जानते हो, उस समय यह मानसिक दशा कैसी थी? उस समय हृदयपर कौन कौनसे भावोंका चित्र अंकित था? कई बार तुम्हें कहा होगा, पर फिर कहूँगा, कहनेसे, उन बातोंको तुम्हें सुनानेसे, और बार बार सुनानेसे, मुझे सान्त्वना मिलती है।

नागदेव—जिस बातसे तुम्हें सान्त्वना मिलती है उसे करनेसे मुझे भी सुख होता है, यदुराय, कहो, अवश्य कहो, जितनी बार कहोगे मैं उत्सुकतासे सुनूँगा।

यदुराय—तुम जानते हो मैं त्रिपुरीकी सेनामें भट था। यद्यपि पद मेरा साधारण भटोंके समान ही था, पर सब जानते थे कि योग्यतामें मैं किसी भी बलाधिकृत, वरन् महाबलाधिकृतसे भी कम न था, कमसे कम एक कुलीन ब्राह्मण और ऐसा वैसा ब्राह्मण नहीं, साम्राज्यका

महामंत्री और मेरा गुरुदेव सुरभी पाठक तक, मेरी योग्यताकी अनेक बार प्रशंसा करता था ।

नागदेव—सारा महाकोशल इस बातको जानता है ।

यदुराय—जब मैं सुनता था कि शहाबुद्दीन गोरीकी सेनाने दिल्लीपति पृथ्वीराजकी सेनाको परास्त किया, कान्यकुब्जपति जयचन्दको हराया, महोबापति परमाल देवपर विजय प्राप्ति की, तब मेरे शरीरमें विद्युत दौड़ जाती थी । मैं विचारने लगता था कि जब त्रिपुरीपर उसका आक्रमण होगा तब महाकोशल राज्यकी रक्षा मैं करूँगा ।

नागदेव—धन्य है तुम्हारा साहस और देशभक्ति ।

यदुराय—सेनामें साधारण भट होनेपर भी मैं महासेनापतिके समान विचारोंमें डूबा रहता था । मिट्टी और कागजोंपर मैं युद्धक्षेत्र और सेनाके आवागमनके मार्गोंके मान-चित्र बनाता था । एक नहीं, इस प्रकारके सैकड़ों मानचित्र मैंने बना डाले होंगे ।

नागदेव—धन्य है, तुम्हारा उत्साह ।

यदुराय—मैं यद्यपि अकुलीनोंके प्रति कुलीनोंके भावोंको जानता था, पर वे भाव इतने गहरे हैं, यह मुझे उस समयतक ज्ञात नहीं था। मैं नहीं जानता था कि अकुलीन होनेके कारण इन सब विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेका मुझे अधिकार ही नहीं है ।

नागदेव—उन्हीं दिनों तो राजकुमारी रेवासुन्दरीसे तुम्हारी भेंट हुई !

यदुराय—हाँ, उन्हीं दिनों; आह ! कैसा उसका सौन्दर्य था ! अर्धविकासित कुसुम अथवा द्वितीयाकी चन्द्र-रेखासे ही उसकी तुलना की जा सकती है । (कुछ रुककर) नहीं, नहीं, एक वस्तुसे और; जानते हो मित्र ?

नागदेव—किस वस्तुसे ?

यदुराय—प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखासे । आह ! वही तो मेरे दिन उलटनेका मूल कारण हुई । राजकुमारी रेवासुन्दरीका सेनालयोंमें आना आरम्भ हुआ, क्योंकि उसकी रुचि सेनाके कार्योंमें हो चली थी, और सेनाके कार्यमें मुझे पटु देख, उसने सेनासंबंधी बहुत-सी बातें मुझसे जानना प्रारम्भ किया । इसी सिलसिलेमें मेरा उसका प्रेम हो गया । फिर तो अनेक बार वह, उसकी सखी विन्ध्यबाला और मैं चाँदनी रातोंमें बन्दरकूदनी और धुआँधार जाने लगे । परन्तु, मित्र, हम लोगोंका प्रेम शुद्ध, अत्यन्त शुद्ध था ।

नागदेव—कौन प्रेम किस प्रकारका है, इसे बहुत कम लोग जान सकते हैं ।

यदुराय—परन्तु इतना निश्चित है कि चाहे कैसा ही प्रेम क्यों न हो, उसकी पहली निःश्वास बुद्धिमत्ताकी अन्तिम निःश्वास है ।

नागदेव—(मुस्करा कर) हम दोनोंके प्रेमके सम्बन्धमें भी फिर तो तुम यही कहोगे ?

यदुराय—(कुछ सोचकर) हाँ, क्यों कि जिस प्रकार रेवासुन्दरीका प्रेम मेरे लिए घातक सिद्ध हुआ उसी प्रकार मेरा प्रेम तुम्हारे लिए हो रहा है ।

नागदेव—आह मित्र, क्या कह रहे हो ! मैं तो यह मानता हूँ कि कोई भी मनुष्य प्रेमीके लिए जितना करना चाहिए उतना कर ही नहीं सकता ।

यदुराय—परन्तु मैंने तो रेवासुन्दरीके लिए कोई भी ऐसी बात नहीं है जो न की हो और इतने पर भी मेरा प्रेम मेरे निर्वासनका

कारण हुआ, अपमानजनक निर्वासनका! निर्वासनके समय परम भट्टारक और सेनापतिने अकुलीन, गोंड़ आदि जो अपमान-जनक शब्द कहे थे, जिस प्रकारसे उन शब्दोंका उच्चारण किया था, वह, अब तक मेरे कानोंमें गूँज रहा है; जैसी उनकी उस समय मुद्रा थी वह अब तक मेरी आँखोंके सामने घूम रही है। दुःख यही है कि उस समय मैं बद्ध था, मेरे पास शस्त्र भी नहीं थे, नहीं तो मैं उसी समय बता देता कि मैं किस धातुका बना हूँ। (चुप होकर एक लम्बी साँस ले) मेरी सारी आकांक्षायें मिट्टीमें मिला दी गईं, मेरे सारे सुख-स्वप्न नष्ट कर दिये गये! और इसका कारण? यही न कि मैं गौड़ हूँ?

[नागदेव उसके कन्धेपर हाथ रखकर उसकी ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

यदुराय—देखो, मित्र, उस रेवासुन्दरीको भी भूलूँगा, वह भी तो कुलीन है। कुलीनतामें प्रेम पारद-राशिके समान रहता है, जिसे स्थिर रखना कठिन ही नहीं परन्तु असम्भव है। तभी तो मैंने कहा न कि उसका सौन्दर्य प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखाके समान है। आह! मेरे निर्वासनके पश्चात् उसीने मेरे लिए क्या किया? उससे मेरा क्या सम्बन्ध? (कुछ ठहरकर) उस समय वह मुझसे प्रेम करती थी। अब भी करती है या नहीं, कौन जाने! (फिर कुछ ठहरकर) अब भी करती होगी तो भविष्यमें उसे भी कुलीनताके अभिमानसे मेरे प्रति घृणा न हो जायगी, यह कौन कह सकता है! (कुछ ठहरकर और दाँत पीसकर) ओह! कुलीनता! कलचुरियोंको कुलीनताका यह अभिमान! यदि मैंने इस अभिमानको (मुट्ठी बाँधकर) चूर चूर न किया तो इस शरीरको...

नागदेव—(जल्दीसे) बस, मित्र, बस ! आगे नहीं । अर्जुनके समान कोई भीषण प्रतिज्ञा न कर बैठना । तुम उसीके समान वीर हो, साहसी हो, दृढ़ हो, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु उसके सहायक भगवान् कृष्णके समान तुम्हारा कोई सहायक तो नहीं है ।

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) परन्तु मित्र, इस जीवनसे तो शत्रुओंके मस्तकपर क्षण-भरको भी प्रज्ज्वलित होकर मर जाना कहीं अच्छा है। फिर सच्चा साहस मृत्युसे नहीं डरता और न सच्चा चरित्र-बल सत्तासे । और मैं तो यह भी मानता हूँ कि किस मनुष्यका कितना मूल्य है, इसे वह स्वयं ही निर्धारित कर सकता है अन्य नहीं ।

(दोनों कुछ देर चुप रहते हैं)

नागदेव—क्यों, मित्र, तुम्हें सान्त्वना क्योंकर मिलेगी ?

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) चलो, वहीं चलो जहाँ कुलीनता, अकुलीनताकी एकता है, जहाँ क्षत्रिय और गोंड़की एक गति है, जहाँ ऊँच नीचका कोई भेद-भाव नहीं है, वहीं मुझे कुछ सान्त्वना मिलती है, वहीं ।

नागदेव—कहाँ, श्मशानमें ? यह नित्य प्रतिका श्मशानका घूमना तो तुम्हें विक्षिप्त कर देगा, मित्र !

यदुराय—नहीं, नहीं, वही संसारमें सर्वश्रेष्ठ, वही विश्वमें सर्वोत्तम स्थान है ।

[यदुरायका प्रस्थान । पीछे पीछे नागदेव भी जाता है ।
परदा उठता है ।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—श्मशान

समय—संध्या

[कई चिताएँ जल रही हैं, कईकी राख पड़ी हुई है, कई खोपड़ियाँ और अस्थियाँ पड़ी हैं। यदुराय और नागदेवका प्रवेश।]

यदुराय—देखो, मित्र, कैसा सुन्दर और रमणीय स्थान है। इसीलिए तो गोंड़ोंके आदि देव शंकर इसी भूमिमें विहार करते हैं। यहाँ तुम्हें कहीं भेद-भाव दृष्टिगोचर होता है? (एक बुझी हुई चिताके निकट जा कुछ राख उठाकर) यह कुलीनके शवकी राख है या अकुलीनके शवकी? (दूसरी बुझी हुई चिताकी राख उठाकर) इस राख और उस राखमें कोई अन्तर है? (एक जलती हुई चिताके निकट जाकर) इसमें किसका शव जल रहा है? (दूसरी जलती हुई चिताके निकट जाकर) इसमें किसका शव है? यदि एकमें कुलीनका है और दूसरीमें अकुलीनका, तो इन दोनोंके जलनेकी विधिमें तो कोई अन्तर नहीं है न? (एक खोपड़ी उठाकर) यह किसकी खोपड़ी है? कुलीनकी या अकुलीनकी कोई भी कह सकता है मित्र? कोई नहीं; परन्तु जब इसके भीतर मज्जा भरी होगी और ऊपर चर्म एवं केश होंगे, जब इसकी नाड़ियोंमें रक्त-संचार होता रहा होगा, इसकी आँखोंके इन दोनों गड्ढोंमें आँखें होंगीं और इसके दाँतोंके बीचमें जीभ, उस समय यदि यह किसी कुलीनके शरीरपर लगी होगी तो इसमें अकुलीनोंके लिए कैसे कैसे भाव उठे होंगे? इसकी आँखोंने अकुलीनोंको कैसी हेय दृष्टिसे देखा होगा? इसकी जीभने अकुलीनोंका कितना तिरस्कार किया होगा? (खोपड़ीको फेंकते हुए) चल, दूर हट, कुलीनोंकी खोपड़ी! (उसे फिर उठाकर) नहीं नहीं, मित्र, मैंने निरर्थक ही इस खोपड़ीका अपमान किया। कदाचित् यह किसी अकुलीनकी ही हो। (खोपड़ीपर प्रेमसे हाथ फेरता है।)

नागदेव—(जो अब तक स्तब्ध-सा खड़ा था, आगे बढ़कर) मित्र, मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि तुम नित्य प्रति इस प्रकार श्मशानमें आये तो अवश्यमेव विक्षिप्त हो जाओगे। चलो, हम लोग यहाँ एक क्षण न ठहरेंगे।

[सुरभी पाठकका प्रवेश]

सुरभी पाठक—कौन ? यदुराय ?

यदुराय—(सुरभी पाठकको देख, आश्चर्यसे आगे बढ़ प्रणामकर) कौन ? गुरुदेव ? आप यहाँ कहाँ ?

सुरभी पाठक—मुझे परम भट्टारकने महामंत्रीके पदसे हटाकर बन्दी बनानेकी आज्ञा दी थी।

यदुराय—(और भी आश्चर्यसे) अच्छा ? अपराध ? आप तो कुलीन हैं, गुरुदेव ?

सुरभी पाठक—अपराध और कोई नहीं, देशकी रक्षाका संकल्प ही अपराध था। त्रिपुरीके क्षत्रियोंने महाकोशलको विदेशियोंके हाथ बेच देनेका निश्चय किया है और मैने उसका विरोध किया था।

यदुराय—(घृणासे अट्टहासकर) यह कुलीनोंकी कुलीनता है !

सुरभी पाठक—भागकर तुम्हारा पता लगाते लगाते यहाँ आया हूँ। तुम्हें देशकी रक्षा करनी होगी, यदुराय।

यदुराय—(लंबी साँस लेकर) एक अकुलीन देशकी रक्षा करेगा ?

सुरभी पाठक—अवश्य। अकुलीन गोंड़ ही महाकोशलकी रक्षा करेगा और ब्राह्मण उसे सहायता देगा।

यदुराय—(गद्‌गद होकर) धन्य मेरा भाग्य ! धन्य गुरुदेव !

[सुरभी पाठकके पैर पकड़ लेता है। सुरभी पाठक यदुरायको हृदयसे लगाता है।]

यवनिका पतन

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—त्रिपुरीके राज-प्रासादका सभा-कक्ष

समय—रात्रि

[सभा-भवन वही है जो पहले अंकके पहले दृश्यमें था। विजयसिंह देव चण्डपीड तथा सभी सामन्त और कुलपुत्र अपने अपने स्थानोंपर बैठे हैं। नर्तकियाँ नृत्य कर रही हैं। नर्तकियाँ जाती हैं। कुछ देर सन्नाटा रहता है।]

चण्डपीड—(खड़े होकर) परम भट्टारकने सुना ? उस राजद्रोही सुरभी पाठकने यदुरायको क्षत्रिय बनाया है और महा-कोशलके महा-सेनापति-पदपर उसका अभिषेक कराया है।

विजयसिंह देव—(आश्चर्यसे) अच्छा ?

चण्डपीड—साथ ही वे सात वस्तुएँ,—अर्थात चँवर, व्यजन, शंख, श्वेत छत्र, मुकुट, सिंहासन और शयन, जिनका उपयोग महाकोशलमें केवल परम भट्टारक ही कर सकते हैं और कोई क्षत्रिय तक नहीं कर सकता, यदुरायको उपयोग करनेको दी गई हैं।

विजयसिंह देव—ओहो ! इतनी बड़ी बात ?

चण्डपीड—और फिर यह सब अपने मण्डलाके माण्डलिक राजा नागदेव गोंड़के यहाँ हुआ है।

विजयसिंह देव—नागदेवका यह साहस ?

चण्डपीड—यह भी ज्ञात हुआ है कि यदुरायको जब निर्वासित

किया गया तब वह नागदेवके यहाँ ही गया था और उसे गुप्त रूपसे उसीने आश्रय दे रखा था।

विजयसिंह देव—(सिर हिलाकर) हूँ।

चण्डपीड—एक बात और रही होगी। सुरभी पाठकका भी उससे गुप्त रूपसे पत्र-व्यवहार चलता होगा। सुरभी पाठक यहाँसे भाग सीधा मण्डला गया। वह भी वहाँ गुप्त रूपसे रहा, और, श्रीमान्, अभिषेकके समय ही सारा षड्यंत्र खुला।

विजयसिंह देव—तब तो, चण्डपीड, वह सुरभी पाठक धूर्तोंका अधिपति निकला।

चण्डपीड—मुझे तो उसपर बहुत दिनोंसे सन्देह था, महाराज, परन्तु वह श्रीमान्‌के पितामहके समयसे महामंत्री था, परम भट्टारकका भी उसपर बड़ा विश्वास था, इसलिए उसके विरुद्ध मुझे कुछ भी कहनेका साहस न हुआ था।

विजयसिंह देव—विश्वासघातक!

चण्डपीड—(कुछ ठहरकर) महाराज, एक सबसे बुरी बात जो हुई वह यह है कि उस अभिषेकमें महाकोशलके प्रत्येक मुख्य स्थान और मुख्य समुदायके व्यक्ति उपस्थित थे। अभिषेकके पश्चात् सारे देशमें 'महाकोशलके महासेनापतिकी जय' 'महाकोशलकी जय'— ये वाक्य बोले जा रहे थे। सभी स्थानोंसे गुप्तचर आ आकर ये सूचनाएँ दे रहे हैं।

विजयसिंह देव—(विचलित होकर) तब तो बड़ी आपत्तिका समय आ गया?

चण्डपीड—नहीं, श्रीमान्, आप तनिक भी चिन्ता न करें, आप

अपने चित्तको प्रसन्न रखें। मेरे महामंत्री रहते हुए यदि महाराजको कोई कष्ट हुआ तो मुझे धिक्कार है। मेरी तो इच्छा तक न थी कि इन बातोंको परम भट्टारकके कानों तक पहुँचाता, कई दिनों तक पहुँचाई भी नहीं, परन्तु जब बहुत अधिक चर्चा सुननेमें आने लगी तब महाराजको सूचना देना कर्तव्य हो गया। मैंने इसे ठीक करनेकी समस्त व्यवस्था कर ली है।

विजयसिंह देव—(उत्सुकतासे) क्या किया है, चण्डपीड ?

चण्डपीड—महाकोशलके सभी महा पण्डितोंको बुलाकर एक व्यवस्था लिखाई है कि हिन्दू धर्मशास्त्रोंके अनुसार कोई भी शूद्र इस प्रकार द्विज नहीं बनाया जा सकता।

विजयसिंह देव—सत्य ही है।

चण्डपीड—वरन् जो द्विज किसी शूद्रको इस प्रकार द्विज बनाता है उसका द्विजत्व नष्ट होकर वह स्वयं शूद्र हो जाता है।

विजयसिंह देव—अवश्य।

चण्डपीड—और वह द्विज तथा द्विज बननेवाला वह शूद्र, धर्मानुसार प्राण-दण्डके अधिकारी होते हैं।

विजयसिंह देव—(प्रसन्न होकर) वाह वाह, बुद्धिमानीकी पराकाष्ठा है। वाह ! चण्डपीड, वाह ! इस देशकी धर्मभीरु जनतापर जितना प्रभाव महाकोशलके पंडितोंकी इस व्यवस्थाका पड़ेगा उतना किसी बातका नहीं पड़ सकता। तुमने अच्छा सोचा।

चण्डपीड—और भी कई बातें की हैं, श्रीमान्।

विजयसिंह देव—क्या क्या ?

चण्डपीड—महाकोशल देशके सभी प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित सामन्तों,

कुलपुत्रों, श्रेष्ठियों और व्यवसायियोंको बुलाकर उनसे एक वक्तव्य लिखवाया है।

विजयसिंह देव—वह क्या ?

चण्डपीड—वह यह, श्रीमान्, कि देशके सुख और शान्तिके लिए सुरभी पाठक, यदुराय और नागदेवका यह षड्यंत्र अत्यन्त घातक है, राजभक्ति हम महाकोशलवासियोंका प्रथम कर्तव्य है, अतः महाकोशलके लोग इन राजद्रोहियोंको किसी प्रकारकी सहायता न दें।

विजयसिंह देव—बहुत अच्छा !

चण्डपीड—और यह भी लिखवाया है कि जो सहायता देंगे उन्हें राज्यकी ओरसे जो कुछ भी दंड दिया जायगा वह उचित होगा।

विजयसिंह देव—वाह वाह ! वाह वाह ! ग्रामोंमें सामन्तों और कुलपुत्रोंकी जागीरोंके लोग कभी उनके विरुद्ध कुछ भी करनेका साहस नहीं कर सकते और नगरोंमें सभी श्रेष्ठियों और व्यापारियोंसे दबे रहते हैं, अतः यहाँ इनके विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता।

चण्डपीड—फिर, श्रीमान्, पण्डितोंकी इस धार्मिक व्यवस्था और सामन्त आदिके इस वक्तव्यकी अनेक प्रतिलिपियाँ करा कराकर नगर नगर और ग्राम ग्राममें दूतोंके हाथ भेज दी हैं। उन दूतोंको आज्ञा दे दी है कि वे प्रत्येक नगर और ग्रामके चतुष्पथोंपर डुग्गी पीट पीटकर लोगोंको एकत्रित कर इस व्यवस्था और वक्तव्यको पढ़कर सुना दें।

विजयसिंह देव—सर्वथा ठीक किया, अपढ़ भी सब जान जायँगे।

चण्डपीड—गुप्तचरोंकी संख्या द्विगुण और चाटोंकी संख्या चतुर्गुण करनेकी भी आज्ञा दे दी गई है।

विजयसिंह देव—ठीक।

चण्डपीड—उनकी वेतन-वृद्धि भी कर दी गई है ।

विजयसिंह देव—बहुत अच्छा किया ।

चण्डपीड—और उन्हें यह भी आज्ञा दे दी गई है कि जो कोई भी 'महाकोशलके महासेनापतिकी जय' अथवा 'महाकोशलकी जय' बोलता सुना जाय वह तत्काल बंदी किया जाय ।

विजयसिंह देव—बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ।

चण्डपीड—यहाँ दंडनायक और दंडनायकोंको भी आज्ञा दे दी है कि ऐसा कोई भी बंदी मुक्त न किया जाय और तत्काल दंड-पाशिक और दण्डकके पास कारागृहमें भेज दिया जाय ।

विजयसिंह देव—ठीक । इससे सारी प्रजा भयभीत होकर राज-द्रोहियोंका जयजयकार भूल जायगी ।

चण्डपीड—चाटोंको यह आज्ञा भी दी है कि यदि कहीं भी इन राजद्रोहियोंका समुदाय देखें तो तत्काल बाण और गदाएँ चलाकर उस समुदायको भंग कर दें ।

विजयसिंह देव—यह भी ठीक किया ।

चण्डपीड—सेनामें भटोंकी वृद्धिकी आज्ञा भी दे दी है और मंडलापर आक्रमणकी तैयारीके लिए भी कह दिया है । बहुत शीघ्र मण्डलापर आक्रमण किया जायगा ।

विजयसिंह देव—इसमें जहाँ तक हो बहुत शीघ्रता होनी चाहिए, जिसमें वे लोग अपना संगठन न करने पायँ ।

चण्डपीड—बहुत शीघ्रता की जायगी, श्रीमान्, विश्वास रखे । एक बात और की है ।

विजयसिंह देव—वह क्या ?

चण्डपीड—कुतुबुद्दीनको भी इसकी सूचना कर दी है जिससे समयपर यदि आवश्यकता हो तो वहाँसे भी सहायता मिल सके।

विजयसिंह देव—हाँ, हाँ, यह भी आवश्यक था। (कुछ ठहरकर) क्यों चण्डपीड, सर्व साधारणमें राजद्रोहका इस प्रकार प्रचार और आन्दोलन इस देशके लिए नई बात है। यहाँ तो राजभक्ति और राजाज्ञाका प्रतिपालन ही सदा होता रहा है।

चण्डपीड—इसी लिए तो, श्रीमान्, इसके दमनके लिए नये उपायोंका अविष्कार करना पड़ा। जिस प्रकार ये राजद्रोही सर्व साधारणको अपनी ओर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, उसी प्रकार हम सर्वसाधारणको अपनी ओर करनेका प्रयत्न करेंगे।

विजयसिंह देव— उचित ही है।

चण्डपीड—फिर हमारे हाथमें तो उन्हें दंड देनेकी सत्ता है, जो इन राजद्रोहियोंके पास नहीं है, अतः जो हमारी ओर नहीं होंगे उन्हें हम कठिन दण्ड देंगे।

विजयसिंह देव—हाँ, यह तो है ही।

चण्डपीड—इसी लिए तो मैंने परम भट्टारकसे निवेदन किया कि आप तनिक भी चिन्ता करें। मैंने तो पहले यहाँतक सोचा था कि जितने लोग उस अभिषेकमें गये थे उनका पता लगाकर उन्हें कठिन दण्ड दूँ, पर फिर यह सोचा कि कहीं उत्तेजना फैलकर विप्लव न हो जाय।

विजयसिंह देव—हाँ, हाँ, ये सब कार्य बहुत सावधानीसे होने चाहिए। निस्सन्देह तुम प्रशंसाके पात्र हो। एक नवीन परिस्थितिमें तुमने उसका सामना करनेके लिए इतने नवीन उपायोंका अविष्कार कर

दूसरा दृश्य

स्थान—नागदेवके प्रासादकी दालान

समय—तीसरा पहर

[दालान अन्य दालानोंके समान ही है। भित्तिका रंग भिन्न है। यदुराय और नागदेवका प्रवेश।]

यदुराय—देखा, नागदेव, कुलीनोंकी कुलीनताको देखा? मेरे कुलीन बना लेनेसे कुलीन ब्राह्मण भी अकुलीन शूद्र हो गया। महा-कोशलके महा पण्डितोंने धर्मके अनुसार हम दोनोंको प्राण-दण्डकी व्यवस्था भी दे दी।

नागदेव—महान् आश्चर्यकी बात है, मित्र!

यदुराय—आश्चर्यकी तो कोई बात नहीं, राज-सत्ताने भय और लोभसे उन पण्डितोंको मोल ले लिया है।

नागदेव—तो कुलीन पण्डित भी क्रय-विक्रयकी सामग्री हैं?

यदुराय—पतित समाजकी पतित अवस्थाका यह नग्न चित्र है। जिस समाजका मस्तिष्क और शास्त्रीय ज्ञान मोल लिया जा सकता है, उस समाजके उद्धारकी बहुत कम सम्भावना रह जाती है।

नागदेव—परन्तु देशकी सर्वसाधारण जनता तो आज इन कुलीन पण्डितोंके साथ नहीं दिखती। पण्डितोंकी इस धर्म-व्यवस्था, और अकेली यह व्यवस्था ही नहीं, सामन्तों और श्रेष्ठियोंके वक्तव्य एवं राज्यकी ओरसे घोर दमन होनेपर भी, सारे देशमें तुम्हारा 'जय-जयकार' हो रहा है, वरन् जैसे जैसे यह दमन बढ़ता जाता है, वैसे वैसे जय-घोष भी बढ़ रहा है। अत्यधिक वेतन देनेपर भी उन्हें चरों, चाटों और भटोंकी भरतीमें जितनी चाहिए उतनी सफलता नहीं

मिल रही है, और तुम्हारी सेनामें देशोद्धारके लिए अवैतनिक रूपसे भटोंके दलके दल आ रहे हैं।

यदुराय—इसीलिए तो मुझे देशोद्धारकी आशा है। मैं तो तुमसे यही कह रहा हूँ कि जिस समाजकी यह अवस्था हो जाती है उसके उद्धारकी सम्भावना नहीं रह जाती। इस कुलीन समाजके उत्कर्षकी मुझे बहुत कम सम्भावना दिखती है।

नागदेव—परन्तु, मित्र, तुम्हारी इस जय-जयकारमें कुलीन भी सम्मलित हैं। तुम्हारी सेनामें कुलीनोंकी भी बड़ी संख्या है। तुम कुलीनोंसे इतने अप्रसन्न हो गये हो कि उनकी अच्छी बातें भी तुम्हारी दृष्टिमें नहीं आ रहीं है।

यदुराय—हो सकता है, परन्तु मित्र, उन कुलीनोंने कैसी हेय दृष्टिसे मुझे देखा है, मेरा किस प्रकार अपमान किया है, मेरे कुलीन बन जानेपर भी किस प्रकारकी धर्म-व्यवस्था दी है—ये सब बातें क्या भूलनेकी वस्तु हैं? फिर मैं तो भूल ही रहा था कि यह नई धर्म-व्यवस्था निकल आई। त्रिपुरीके राज-भवनमें बैठे बैठे जब तक ये कुलीन महाकोशलपर राज्य कर इस प्रकारकी नित-नई बातोंको करते रहेंगे तबतक मेरा क्रोध कैसे शान्त होगा, बन्धु?

[सुरभी पाठकका प्रवेश]

सुरभी पाठक—(मुस्कराते हुए) कुलीन बननेपर भी कुलीनोंके ऊपरका क्रोध अबतक तुम्हारे हृदयसे नहीं जा रहा है, क्यों, यदुराय?

यदुराय—(नमन करते हुए) ठीक कहते हैं, गुरुदेव, पर क्या कहूँ? यह क्रोध बहुत दूरतक शान्त हो गया था, पर धर्म्म-व्यवस्थाके पश्चात् वह क्योंकर शान्त रहता? प्रतिकारकी जो भावना बुझती

जा रही थी वह पुनः जागरित हो उठी है।

सुरभी पाठक—परन्तु, वत्स, तुम एक बात नहीं देखते।

यदुराय—क्या गुरुदेव ?

सुरभी पाठक—जिस दिन तुम्हारे हाथों त्रिपुरीका उद्धार हो जायगा उसी दिन आपसे आप अपनेको कुलीन कहनेवाले इन पतितोंका पतन और तुम्हारा उत्कर्ष हो जायगा। प्रश्न इन पतित कुलीनोंसे बदला लेनेका नहीं, पर देशको स्वतंत्र करनेका है।

यदुराय—मानता हूँ, गुरुदेव, और इस बातको समझता भी हूँ पर फिर भी क्या करूँ ?

सुरभी पाठक—(मुस्कराते हुए) हाँ, हाँ, अभी युवा-रक्त ही तो नाड़ियोंमें बह रहा है। प्रौढ़ और युवावस्थामें यही तो अन्तर है। अच्छा, सुनो, अभी सूचना आई है कि त्रिपुरीसे सेना मण्डलापर आक्रमण करनेके लिए बिदा हो गई है।

यदुराय—(हर्षसे) अच्छा तो युद्धका समय आ गया ? (नागदेवसे) मित्र, मेरे कारण तुमने इसे निमंत्रण दिया है।

नागदेव—फिर वही बात। इसका उत्तर मैं तुम्हें कई बार दे चुका हूँ।

सुरभी पाठक—अपनी सेना तैयार तो है ही ?

यदुराय—पूर्ण रीतिसे, गुरुदेव।

नागदेव—और विदेशियोंसे देशको स्वतंत्र करनेके लिए त्रिपुरीसे युद्ध, आपसका ही यह रक्त-पात, अनिवार्य भी है।

सुरभी पाठक—यही दीख पड़ता है।

यदुराय—तो फिर तैयारी कर राज्य-सीमापर प्रस्थान हो।

[तीनोंका प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—रेवासुन्दरीका उद्यान

समय—सन्ध्या

[उद्यान पुराने ढँगसे सुन्दरतासे बना हुआ है। छोटी छोटी सड़कोंपर संगमर्मर और भाँति भाँतिके पत्थर लगे हुए हैं। उनके आसपास क्यारियोंमें अनेक रंगके पुष्पोंसे युक्त पौधे और फिर ऊँचे ऊँचे वृक्ष दिखाई देते हैं। बीचमें छोटा-सा शिवालय है जिसके चारों ओर विल्व वृक्ष दिखाई देते हैं। शिवालयके सामने एक कुण्ड है जिसमें कमलके पुष्प खिले हैं। कुण्डके निकट ही पत्थरकी अनेक छोटी-बड़ी आसंदियाँ रखी हुई हैं। एकपर बैठी हुई रेवासुन्दरी गा रही है।]

गान

मैं खोज रही अपना पथ
इस जगकी श्यामलतामें,
खो गई किरण आलोकित
मनकी उस कोमलतामें।
अपना सब कुछ देकर ही
मिट जाय व्यथा इस मनकी,
बदलेमें कुछ पा जाऊँ
यह साधना हो जीवनकी।
अन्तरका ज्वार कुसुम बन
जा बिखरे उन चरणोंमें,
सब उपालम्भ गल जायें
इन नीर भरे नयनोंमें।

[विन्ध्यबालाका प्रवेश। विन्ध्यबालाको देख रेवासुन्दरी उठकर उसकी ओर बढ़ती है।]

रेवासुन्दरी—कहो, सखि, युद्धका क्या सम्वाद है ?

विन्ध्यबाला—यदुरायकी सेना त्रिपुरीकी सेनाको परास्त करती हुई बराबर आगे बढ़ रही है।

[दोनों आसंदियोंपर बैठ जाती हैं।]

रेवासुन्दरी—तो कुलीन अकुलीनोंसे हार रहे हैं ? परम भट्टारक गांगेयदेव और कर्णदेवके वंशज गोंडोंसे परास्त हो रहे हैं ? इतना धन और व्यवस्थापूर्ण सेनाके रहते हुए त्रिपुरीपर मण्डलाकी जीत हो रही है ?

विन्ध्यबाला—ऐसी बात तो नहीं है, राजकुमारी, मण्डलाकी नहीं, समस्त महाकोशलकी सेना है, और वह सेना भी गोंड़ोंकी ही तो नहीं है, उसका बहुत भाग कुलीनों और क्षत्रियोंका है। यह कहो न कि देशके हृदयसे शरीर हार रहा है, मनसे धन परास्त हो रहा है, व्यवस्थामें धर्म एवं न्यायसे अधर्म और अन्याय हार रहा है।

रेवासुन्दरी—तुम जितना ठीक वर्णन कर सकती हो उतना मैं कहाँ कर सकती हूँ ? विन्ध्यबाला, मैं तो केवल ऊपरकी ही बात देखती हूँ, भीतरी बातका अवलोकन तो तुम कर सकती हो, सखि।

विन्ध्यबाला—धीरे धीरे तुम भी करने लगोगी, राजकुमारी। इस प्रकारके अवलोकनके लिए जैसे हृदयकी आवश्यकता है वह भगवानने तुम्हें भी दिया है। (कुछ ठहरकर) अच्छा, अब तुम थोड़ा आजका अपना वृत्त तो बताओ। आहतोंकी सेवा-शुश्रूषामें कुछ आनन्द मिला ?

रेवासुन्दरी—ऐसा, सखि, जैसा आजके पूर्व कभी न मिला था।

विन्ध्यबाला—अब इस युद्धके पश्चात् इसी प्रकार क्षुधित, दलित और रुग्णोंकी सेवा करना। देखना उसमें भी कितना सुख प्राप्त होता है। तुम्हारे भेद-नाशके मार्गपर चलनेकी ये भिन्न भिन्न वीथियाँ हैं।

रेवासुन्दरी—मुझे तो तुम जो बताती जाओगी मैं वही करती जाऊँगी। (कुछ ठहरकर) क्यों, विन्ध्यबाला, इस युद्धमें परम भट्टारकका क्या होगा ? कहीं उनके प्राणोंपर संकट न आ जाय, जब यह विचार मनमें उठता है, तब हृदय विदीर्ण होने लगता है।

विन्ध्यबाला—उनकी प्राण-रक्षाका भी उपाय सोच रही हूँ, राजकुमारी, भगवान् कोई न कोई उपाय सुझावेगा ही। (चारों ओर देखकर) अच्छा, अब अँधेरा हो चला है। आजके अँधेरेमें जो उजाला होनेवाला है वही अब तुम्हें बताती हूँ। यदुराय आज तुमसे भेंट करने आवेंगे।

रेवासुन्दरी—(उत्सुकतासे) वे आवेंगे ? आवेंगे ? तुम तो कहती थीं न कि त्रिपुरीको जीते बिना, त्रिपुरीमें पैर न रखनेकी उन्होंने प्रतिज्ञा की है ?

विन्ध्यबाला—हाँ, सो तो की थी, परन्तु तुम्हारी निरन्तर बढ़ती हुई व्यथा, और दिनपर दिन होती हुई क्षीण एवं दुर्बल अवस्थाके कारण मैंने उन्हें समझाकर एक बार आनेको राजी कर लिया है।

रेवासुन्दरी—कब और कहाँ आवेंगे ?

विन्ध्यबाला—कुछ अन्धकार होते ही उन्होंने इसी उद्यानमें आनेको कहा है।

रेवासुन्दरी—यहाँ आनेमें उन्हें किसी प्रकारका भय तो नहीं है ?

विन्ध्यबाला—मैंने उसी सुरंगसे उनके आनेकी व्यवस्था की है जिसका द्वार तुमने मुझे बताया था और कहा था कि परम भट्टारक और तुम्हारे अतिरिक्त वह मार्ग किसीको ज्ञात नहीं है।

रेवासुन्दरी—हाँ, तब तो कोई भय नहीं है। (कुछ ठहरकर)

क्यों, विन्ध्यबाला, अब भी कुलीनोंके प्रति उनके हृदयमें वैसी ही घृणा, वैसा ही क्रोध है ?

विन्ध्यबाला—बीचमें कुछ कम हो गया था, पर जबसे महा-पण्डितोंकी वह धर्म-व्यवस्था निकली है तबसे फिर वही दशा हो गई है। तुम्हारे पासतक आना उन्होंने बड़ी कठिनाईसे स्वीकार किया है।

रेवासुन्दरी—क्या मुझसे भी वे अप्रसन्न हैं ?

विन्ध्यबाला—सो तो उन्होंने नहीं कहा, परन्तु तुम्हारे आनेकी कोई इच्छा भी उन्होंने प्रकट नहीं की।

रेवासुन्दरी—इतनी निष्ठुरता ?

[यदुरायका प्रवेश। वह सैनिक वेषमें है। शरीरपर कवच और सिर-पर शिरस्त्राण है। आयुधोंसे भी सुसज्जित है। यदुरायके मुखपर गंभीरता छाई हुई है। यदुरायको देखकर रेवासुन्दरी खड़ी हो जाती है और विन्ध्यबाला शीघ्रतासे चली जाती है।]

यदुराय—(आगे बढ़कर) यह अकुलीन यदुराय महाकोशलकी राजकुमारी रेवासुन्दरीका अभिवादन करता है। (हाथ बाँधकर सिर झुकाता है।)

रेवासुन्दरी—(सकुचाकर) क्या मुझसे भी आपको इस प्रकारका व्यवहार युक्ति-संगत दिखता है ?

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) क्या आप कुलीन क्षत्रिय राज-कुमारी नहीं हैं ?

रेवासुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) जन्म तो मेरा क्षत्रिय कुलमें हुआ है, इसे मैं क्यों कर अस्वीकृत कर सकती हूँ, परन्तु....

यदुराय—(कुछ उत्तेजित स्वरमें) किन्तु परन्तु क्या राजकुमारी, क्या आपहीके पिताने मेरा तिरस्कार नहीं किया था ?

रेवासुन्दरी—(डरते हुए) परन्तु, वीरवर, पिताके दोषकी भागिनी सन्तान किस प्रकार हो सकती है ?

यदुराय—(कुछ सोचकर) ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी ।

रेवासुन्दरी—ओह ! आपके ऐसे निष्ठुर वचन, प्रियतम !

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) इससे कहीं निष्ठुर वचनोंका प्रयोग आपके पिताने मेरे प्रति किया था ।

रेवासुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) उन वचनोंका क्या मैं कोई प्रायश्चित्त कर सकती हूँ ? (कुछ कहकर) वीरवर, आप नहीं जानते कि मैंने उसका कितना प्रायश्चित्त किया है । भगवान जानते हैं कि आपके जानेके पश्चात् यदि एक दिन भी मैंने रुचिसे भोजन किया हो, या एक रात्रि भी मैं सुखपूर्वक सोई होऊँ ।

यदुराय—(निकट जाकर) क्या कलचुरि-राजकुलमें भी ऐसी देवी हो सकती है जो अकुलीनको अकुलीन न माने, उससे घृणा न करे ?

रेवासुन्दरी—(गद्गद स्वरसें) मैं अपने हृदयको चीरकर आपके सम्मुख किस प्रकार रक्खूँ ? क्या विन्ध्यबालाने मेरी दशाके सम्बन्धमें आपसे कुछ नहीं कहा ?

यदुराय—अवश्य कहा था, परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि इस राजवंशमें कोई ऐसा भी उत्पन्न हो सकता है । विष-वृक्षसे तो विष-फलकी ही उत्पत्ति होती है ।

रेवासुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) फिरा मेरा आपको विश्वास दिलाना कदाचित् सम्भव नहीं है । मेरा भाग्य ही ऐसा जान पड़ता है कि आपकी अनुपस्थितिमें आपका वियोग-दुःख मुझे दुखी रक्खे,

और इतने दिन पश्चात् जब आपके दर्शन हुए, तब आपके वचनों.... (सिर झुका लेती है। नेत्रोंसे टपटप आँसू गिरते हैं।)

यदुराय—(रेवासुन्दरीकी ठोड़ी पकड़ उसका सिर ऊँचाकर) हैं! हैं! तुम तो रोने लगीं। क्या सत्य ही मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है? क्या सचमुच तुम अपने कुलके समान नहीं हो? क्या यथार्थमें तुम मुझे हृदयसे चाहती हो? (घुटने टेककर) मुझे क्षमा करो, राजकुमारी। मैंने आवेशमें आकर बड़ी उदण्डता की है। मैंने व्यर्थ ही तुम्हें दुःख पहुँचाया है, कष्ट दिया है; मैं अपराधी हूँ; तुमसे क्षमा चाहता हूँ, रेवासुन्दरी।

रेवासुन्दरी—(यदुरायको उठाते हुए) यह आप क्या करते हैं, देव, आप तो मेरे हृदयके अधीश्वर हैं, मेरे पूज्य हैं। आप मुझसे क्या क्षमा माँगते हैं? मैं आपके हृदयसे अपरिचित नहीं हूँ। मैं जानती हूँ उसपर अत्यधिक चोट पहुँची है और इस समयके आपके वाक्य उस चोटके प्रतिघातस्वरूप निकले हैं। मुझे उनका कोई दुःख नहीं है। मुझे हर्ष है कि आपने अन्तमें मेरे सच्चे प्रेमको पहचान लिया। चलिए, उस आसंदीपर बैठिए। कुछ देर हम लोग उसी प्रकार बातचीत करें जिस प्रकार आपके निर्वासनके पूर्व करते थे।

[दोनों जाकर एक बड़ी आसंदीपर बैठ जाते हैं]

यदुराय—(चारों ओर देखकर) कितना सुखमय समय हम लोगोंने इस उद्यानमें बिताया है, प्रिये!

रेवासुन्दरी—(यदुरायकी ओर देखते हुए) अवश्य, प्रियतम, और आपके जानेके पश्चात् वे ही दिन, वे ही घड़ियाँ और वे ही पल तो मुझे स्मरण आ आकर व्यथित करते थे।

यदुराय—(फिर उस आसंदीको देख, चारों ओर देख तथा भौंह चढ़ाकर) पर, राजकुमारी, मेरे निर्वासनके पश्चात् भी तो आप इसी राज्यमें रहीं न ? इसी राज्यके राज-प्रासादोंमें निवास और उद्यानमें विहार किया, क्यों ? (लम्बी साँस ले खड़ा होकर) आह ! मैंने तो प्रतिज्ञा कर ली थी कि जब तक त्रिपुरीको जीत न लूँगा उसमें पैर न रक्खूँगा; फिर मैं यहाँ क्यों आया ? एक प्रमदाका प्रेम ! एक नारीका नेह ! फिर उसका प्रणय जो उसकी कन्या है जिसने मेरा अपमान किया, मुझे तिरस्कृत कर निकाल दिया; मुझसे मेरी प्रतिज्ञा तुड़वाकर आज मुझे यहाँ खींच लाया ! (रेवासुन्दरीके निकट जाकर जो अब खड़ी हो गई है) यदि आप मुझे बहुत चाहती थीं, मेरे बिना यदि आपको भोजन अच्छा नहीं लगता था, नींद नहीं आती थी, तो आप मुझसे वहीं मिलने क्यों नहीं आ गईं, जहाँ मैं था ? (जोरसे ठठाकर हँसता है) यह सब प्रेमकी विडम्बना है । आपने मेरे लिए कौन-सा त्याग किया ? कलचुरि-राजवंशमें प्रणय ? बिना इसे विजय किये यहाँ एक क्षण भी चोरोंके समान ठहरना मेरे आत्म-सम्मान और मेरी प्रतिष्ठाके विरुद्ध है।

[शीघ्रतासे प्रस्थान । रेवासुन्दरी रो पड़ती है । कुछ देर रोती रहती है ।
चण्डपीडका प्रवेश ।
उसे देखते ही रेवासुन्दरी आँखें पोंछ स्वस्थ हो खड़ी हो जाती है ।]

चण्डपीड—अभी आप किससे बात कर रहीं थी, राजकुमारी ?

रेवासुन्दरी—(चिढ़कर) आपको इससे प्रयोजन ?

चण्डपीड—मुझे प्रयोजन ! इसका क्या तात्पर्य ? महाकोशलका महामात्य, भावी युवराज और आपके भावी पतिको इस राज्यकी छोटीसे छोटी बातसे भी प्रयोजन है ।

रेवासुन्दरी—(क्रोधसे) वाणीको थोड़ा वशमें रखकर बातचीत कीजिए।

चण्डपीड—(ठठाकर हँसकर) वाणीको वशमें रखकर बातचीत करनेसे आपका क्या अभिप्राय है? जो कुछ मैंने निवेदन किया उसका क्या एक अक्षर भी झूठ है?

रेवासुन्दरी—(जोरसे) और चाहे कुछ झूठ न हो, पर अन्तिम वक्तव्य अवश्य झूठ है।

चण्डपीड—क्या आपको विदित नहीं कि परम भट्टारक यह निर्णय कर चुके हैं कि आपका विवाह मेरे साथ होगा। धर्माध्यक्षने अक्षय-तृतीयाको इस शुभ कार्यका मुहूर्त्त भी निकाल दिया है।

रेवासुन्दरी—(सिर दूसरी ओर कर) परम भट्टारकने क्या निर्णय किया और क्या नहीं, यह तो मुझे विदित नहीं, परन्तु इस बातसे मेरा सम्बन्ध है, परम भट्टारकका नहीं।

चण्डपीड—जान पड़ता है लड़कियोंमें स्वेच्छाचारिता इस समय बढ़ती ही जा रही है। क्या मैं यह समझ लूँ कि कान्यकुब्जकी राजकुमारी संयोगिताने जिस प्रकार अपने पिताके प्रतिकूल कार्य कर सारे देशपर आपत्ति बुलाई उसी प्रकार आप भी परम भट्टारककी इच्छाके प्रतिकूल कार्य करेंगी?

रेवासुन्दरी—(जोरसे) मैंने आपसे कहा न कि परम भट्टारककी क्या इच्छा है, यह मैं नहीं जानती।

चण्डपीड—और जो मैंने कहा यदि वही इच्छा हो तो?

रेवासुन्दरी—(दृढ़तासे) तो उनकी इच्छा कभी पूर्ण न होगी।

चण्डपीड—यह आपका अन्तिम निर्णय है?

रेवासुन्दरी—(जोरसे) सर्वथा अन्तिम। जिस मनुष्यको मैं मनुष्य नहीं मानती वरन् पिशाच मानती हूँ, जिसके कार्यमें स्वार्थ और देश-द्रोह भरा है, उससे मैं विवाह करूँ, यह कल्पना तक करनेकी बात नहीं है। सूर्यका पूजक चिताकी अग्निका पूजक नहीं हो सकता। शुद्ध जलमें स्नान करनेवाला कीचड़में नहीं लोट सकता।

चण्डपीड—तो आप उससे विवाह करेंगी जो अभी आपका तिरस्कार करके गया है? महाकोशलकी कुलीन क्षत्रिय राजकुमारी एक अकुलीन गोंड़को वरेगी, क्यों?

रेवासुन्दरी—(चण्डपीडकी ओर फिर घूमकर) मैं क्या करूँगी और क्या नहीं, इससे आपको प्रयोजन नहीं है; और यदि सुनना ही चाहते हैं, तो सुनिए। जो मेरा तिरस्कार करके गया है उसका तिरस्कार भी मुझे शिरोधार्य है और तुम्हारे प्रेमको भी मैं दूरसे नमस्कार करती हूँ। इसका कारण है।

चण्डपीड—वह क्या?

रेवासुन्दरी—देशभक्त मनुष्य प्रकृति देवीकी सबसे महान् कृति होती है। वह किसी जातिका नहीं, पर स्वयं प्रकृति देवीका सुपूत होता है। जिसे तुम अकुलीन कहते हो उसने उसी देशको स्वतंत्र करनेका बीड़ा उठाया है जिसे तुमने विदेशियोंके हाथ बेच दिया है। थोड़ा उसे देखो और अपनेको देखो, थोड़ी उसके हृदयके साथ अपने हृदयकी तुलना करो, थोड़ा उसकी छविके साथ अपनी छविका सामंजस्य करो। उसमें शौर्य, त्याग और महत्ता है। तुममें षड्यंत्र, स्वार्थ और नीचता।

चण्डपीड—परन्तु वह तो उद्यानसे निकलते ही बन्दी कर लिया

गया होगा। कारागृहमें होगा और प्रातःकाल ही सूलीपर चढ़ा दिया जायगा।

रेवासुन्दरी—संसार-भरकी बुद्धिका ठेका तुम्हींने नहीं ले लिया है। दूसरोंमें भी थोड़ी बहुत बुद्धि है। जिस प्रकार सुरभी पाठकको तुम बन्दी नहीं कर सके उसी प्रकार उन्हें भी बन्दी करना सहज नहीं है।

चण्डपीड—(इधर उधर टहलकर रेवासुन्दरीके सामने आ) राजकुमारी! राजकुमारी! क्यों आप अपना सुखी जीवन दुखी बनाती हैं? आपका विवाह यदुरायसे असम्भव है। यदि आप इच्छासे विवाह न करेंगी तो बलपूर्वक विवाह होगा। अतः अपने सुखके लिए ही आप यत्न करें कि आपका हृदय मुझसे प्रेम करने लगे।

रेवासुन्दरी—(घृणासे) परोपकारकी तो आप मूर्त्ति हैं। हृदय भी कोई रथका चक्र है कि जिस ओर घुमाया उसी ओर चलने लगा? चलो, हटो, दूर हो जाओ सामनेसे।

[रेवासुन्दरीका शीघ्रतासे प्रस्थान। चण्डपीड देखता रह जाता है।
परदा गिरता है]

चौथा दृश्य

स्थान—रेवासुन्दरीके प्रासादकी दालान

समय—रात्रि

[दालान अन्य दालानोंके समान ही है । भित्तिका रंग भिन्न है । रेवा-सुन्दरी और विन्ध्यबालाका प्रवेश]

विन्ध्यबाला—तो इस प्रकार उनसे और इस प्रकार चण्डपीडसे बातें हुई ?

रेवासुन्दरी—हाँ, और उनसे तो पूरी बातें ही न हो पाईं । बातोंके बीचमें ही वे इस प्रकार उत्तेजित हो शीघ्रतासे चले कि मुझे जान पड़ा मानो वे उद्यानके वृक्ष और लताओंको भी साथ लिये जा रहे हैं।

विन्ध्यबाला—पर मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदुराय जितना तुम्हें प्रेम करते हैं उतना संसारमें किसीको नहीं ।

रेवासुन्दरी—(लम्बी साँस लेकर) वह समय अब चला गया, सखि । जहाँ प्रेमकी कमी होती है वहीं दोष अधिक दिखाई देने लगते हैं । उन्हें अब मुझमें दोष ही दोष दिखते हैं ।

विन्ध्यबाला—कदापि नहीं, उनका अब भी तुमपर अत्यधिक प्रेम है ।

रेवासुन्दरी—इसका क्या प्रमाण है ?

विन्ध्यबाला—यदि यह न होता तो वे अपनी त्रिपुरी न आनेकी प्रतिज्ञा-भंग कर कदापि तुमसे मिलने न आते ।

रेवासुन्दरी—पर फिर उन्होंने इस प्रकार मेरा तिरस्कार क्यों किया ?

विन्ध्यबाला—उनके हृदयपर जो चोट पहुँची है वह बहुत अधिक है । वे भावुक व्यक्ति हैं, उसे भूल नहीं सके । उनके उस

कठोर व्यवहारके भीतर भी उनका प्रेममय कोमल हृदय छिपा है। (कुछ सोचकर) उन्होंने तुमसे क्या कहा ?—"आपने मेरे लिए कौन-सा त्याग किया है, राजकुमारी ?"

रेवासुन्दरी—हाँ, यह तो अवश्य कहा।

विन्ध्यबाला—और बात भी सच है।

रेवासुन्दरी—सच तो है।

विन्ध्यबाला—फिर वे तुम्हारे प्रेमके कारण ही सेनासे भी निकाले गये, निर्वासित भी किये गये।

रेवासुन्दरी—हाँ, यह भी ठीक है।

विन्ध्यबाला—(कुछ सोचकर) अब हम लोग एक बहुत बड़ा कार्य करेंगी।

रेवासुन्दरी—कौन-सा ?

विन्ध्यबाला—हमें भी युद्ध-क्षेत्रको चलना होगा और यदुरायका पक्ष लेना होगा। तुम परम भट्टारकके प्राण बचाना चाहती हो, तो उनके बचावका भी इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

रेवासुन्दरी—(प्रसन्न होकर) वाह सखि, वाह ! उपाय तो खूब सोचा।

विन्ध्यबाला—तुम्हारा साहस तो होता है न ?

रेवासुन्दरी—इसमें कोई सन्देह है ? तुम तो जानती हो मेरा सेनाके कार्यमें सदा अनुराग रहा है और चण्डपीडको युद्ध-क्षेत्रमें दण्ड देनेका का भी मुझे अवसर प्राप्त होगा।

विन्ध्यबाला—(मुस्कराकर) अब तुमपर शूरता चढ़ने लगी ?

रेवासुन्दरी—अब भी न चढ़ेगी ! (कुछ ठहरकर) अच्छा, यह तो

बताओ कि तुमने मुझे यह क्यों नहीं बताया कि परम-भट्टारक मेरा विवाह चण्डपीडसे करना निश्चित कर चुके हैं ?

विन्ध्यबाला—क्यों तुम्हें और दुखी करती ? जब समय आता, बता देती, तथा बचावका कोई उपाय भी निर्धारित कर लेती। तो फिर अब आज्ञा ?

रेवासुन्दरी—हाँ, एक बात और पूछनी थी। महासेनापतिजीको नहीं समझाया ?

विन्ध्यबाला—न जाने कितना समझाया।

रेवासुन्दरी—पर कोई फल न हुआ क्यों !

विन्ध्यबाला—ना, पुनः समझाऊँगी।

रेवासुन्दरी—(मुस्कराकर) आश्चर्य है कि इतनी बुद्धिमंती पत्नीकी बात भी पति नहीं मानते ?

विन्ध्यबाला—पतिकी बात पत्नी माने यह इस देशका नियम है। पत्नीकी बात पति माने यह किस शास्त्र या स्मृतिमें लिखा है ? (हँसने लगती है।)

[दोनोंका प्रस्थान। परदा गिरता है।]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—देवदत्तके भवनकी दालान

समय—रात्रि

[विन्ध्यबालाका गाते हुए प्रवेश]

गान

निशाके आर्द्र नयनका द्वार
बरसता अश्रु-बिन्दु नीहार ।

हृदयके उच्छ्वासोंका भार
कँपाता-सा तारोंके हार ।

लहर मानसमें उठी अधीर
बहा सन सन कर शून्य समीर ।

दूर पर पूछ रहा अज्ञात
मार्गमें सन्ध्या है या प्रात ?

उठी ज्वाला जीवनके तीर
बुझा पावेगा लोचन-नीर ?

[देवदत्तका सैनिक वेषमें प्रवेश]

विन्ध्यबाला—(देवदत्तको देखकर) यह कैसा आश्चर्य है, नाथ, कि महाकोशलकी सेना पीछे हट रही है ।

देवदत्त—उलटी बात हो रही है, प्रिये, क्या कहूँ । जब मण्डलाके अर्द्ध शिक्षित भट उत्साहसे जयजयकार करते हुए हमारे शिक्षित भटोंपर शस्त्र चलाते हैं, तब वे शस्त्र विद्युत्के समान हमारी सेनापर पड़ते हैं । हमारे भट उन्हें सहन न कर तितर-बितर हो जाते हैं ।

विन्ध्यबाला—और आपके महासेनापति महाबलाधिकृत होते हुए भी महाकोशलकी हार हो रही है ?

देवदत्त—तुम तो मेरी हँसी उड़ाती हो।

विन्ध्यबाला—मैं आपकी हँसी कैसे उड़ा सकती हूँ ? फिर ऐसे गम्भीर अवसरपर ? आप जब महासेनापति हुए उस समय आपने कहा था न कि आप उस पदके योग्य हैं। मैंने आपकी अयोग्यताका उसी समय बोध करा दिया था, आपको उस पदको छोड़ देनेके लिए भी कहा था, पर आपने मेरी प्रार्थना न मानी।

देवदत्त—परन्तु अब तो महामंत्रीजी भी युद्धमें लगे हुए हैं। सारा उत्तरदायित्व अकेले मुझपर नहीं है। एक प्रकारसे तो यह भी कहा जा सकता है कि महासेनापतिका कार्य वे ही कर रहे हैं और मैं केवल उनकी आज्ञाओंका पालन।

विन्ध्यबाला—वे तो महान् बुद्धिमान् हैं। आप कहते ही हैं कि महाकोशल राज्य भरमें वैसा बुद्धिमान् मनुष्य दूसरा नहीं हैं। इतने पर भी आपकी सेना हार रही है ?

देवदत्त—हाँ, हो तो यही रहा है। मैंने कहा न, उल्टी बात हो रही है।

विन्ध्यबाला—उल्टी बात मुझे तो नहीं दिखती।

देवदत्त—कैसे ?

विन्ध्यबाला—आपकी सेनाका हृदय युद्धमें नहीं है। संसारका कोई भी युद्ध बिना किसी विशेष और महान् उद्देशके नहीं लड़ा जा सकता। इसीलिए इतिहासमें अनेक ऐसे स्थल मिलते हैं, जहाँ छोटी छोटी सेनाओंने बड़ी बड़ी सेनाओंपर विजय प्राप्त की है।

देवदत्त—तब क्या किया जाय ? इस प्रकारका कोई उद्देश उत्पन्न करना चाहिए ।

विन्ध्यबाला—यह कोई अस्वाभाविक रीतिसे निर्माण करनेकी वस्तु नहीं है । आपकी सेनाका उद्देश केवल राजवंशकी रक्षा करना है, पर यदुरायकी सेनाका उद्देश उससे कहीं महान् है ।

देवदत्त—क्या ?

विन्ध्यबाला—देशकी स्वतंत्रता । फिर आपकी ओरसे एक भूलके पश्चात् दूसरी भूल हुई है ।

देवदत्त—कैसी भूल ?

विन्ध्यबाला—(अँगुलीपर बताते हुए) प्रथम यदुरायको निकाला गया जिसपर सभी भटोंका अत्यधिक प्रेम है, और उसी यदुरायसे फिर उन्हें युद्ध करना पड़ रहा है । फिर महामंत्रीजीको निकाला गया जिन्हें सारा राज्य प्राणोंसे अधिक चाहता था, और जो यदुरायके साथ हैं । फिर कुतुबुद्दीनका माण्डलिक बना गया, जिससे सभी अप्रसन्न हो गये । फिर यदुरायके पक्षको दबानेके लिए घोर दमन किया गया, जिससे सब चिढ़ गये और अन्तमें मण्डलाके आक्रमणका मार्ग न देखकर स्वयं मण्डलापर आक्रमण किया गया ।

देवदत्त—(सोचते हुए) हाँ, हुआ तो यही, प्रिये ।

विन्ध्यबाला—इसका फल मिलेगा ही । जो कुछ किया जाता है उसका फल अवश्यमेव मिलता है। सारे राज्य और सेनाकी सहानुभूति यदुरायके साथ है । आपकी हार तो निश्चित है । चण्डपीड बुद्धिमान् अवश्य है, परन्तु उसकी बुद्धि छोटे छोटे षड्यंत्रों तक ही परिमित है, महान् कार्योंके योग्य नहीं ।

देवदत्त—तब अब करना क्या ?

विन्ध्यबाला—आपकी विजयके लिए ?

देवदत्त—और किस लिए ?

विन्ध्यबाला—आपकी विजय असम्भव है। पर, हाँ आपके लिए मार्ग अवश्य है।

देवदत्त—वह क्या ?

विन्ध्यबाला—यदि आप चाहें तो अब भी आपकी कीर्ति देशमें फैल सकती है। आपका नाम इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जा सकता है।

देवदत्त—किस प्रकार ?

विन्ध्यबाला—जब त्रिपुरीकी सीमापर युद्ध हो, उस समय आप सेनासे कह दें कि अब तक भूल हुई, पर अब भी भूलको सुधारनेका समय है। यदुरायका पक्ष न्यायपर है। वह देशको विदेशियोंसे स्वतंत्र रखना चाहता है, इसलिए सेना हट जाये, उससे युद्ध न करे। यदि आप ऐसा कह देंगे तो कमसे कम त्रिपुरीमें रक्त-पात न होगा, परम भट्टारकके भी प्राण बच जायँगे और फिर त्रिपुरीका कुतुबुद्दीनके साथ जब युद्ध होगा उस समय आपको भी देशकी ओरसे विदेशियोंके साथ युद्ध करनेका सौभाग्य प्राप्त हो जावेगा।

देवदत्त—(चिल्लाकर) क्या कहती हो, विन्ध्यबाला, क्या कहती हो ? यह कभी होनेकी बात है ? चण्डपीडकी आज्ञाके सम्मुख मेरी ऐसी आज्ञा कोई मानेगा ?

विन्ध्यबाला—मुझे विश्वास है कि इस सम्बन्धमें भटगण चण्ड-पीडकी नहीं पर आपकी आज्ञा मानेंगे।

देवदत्त—(सोचकर) सौ बातकी एक बात यह है कि मुझसे यह न होगा।

विन्ध्यबाला—(ध्यानसे उसकी ओर देखकर) न होगा? अंतिम निर्णय है?

देवदत्त—(जल्दीसे) अन्तिम।

विन्ध्यबाला—(कुछ सोचकर) हाँ, मुझे भी अब तो ऐसा जान पड़ता है। अच्छा, नाथ, तो फिर पत्नी पतिके पापका प्रायश्चित्त करेगी। महाकोशलको विदेशियोंके हाथ बेचनेवालोंका पक्ष लेकर आपने जो युद्ध किया है उसका प्रायश्चित्त मैं करूँगी। आपकी अर्धांगिनीके नाते इस मर्त्यलोकमें आपका कलंक धोऊँगी और परलोकमें आपको नरकमें न गिरने देकर स्वर्गमें खींच ले जाऊँगी। अब आपसे रण-क्षेत्रपर ही भेंट होगी। (शीघ्रतासे प्रस्थान)

देवदत्त—विन्ध्यबाला! विन्ध्यबाला! आह! विन्ध्यबाला!

[पीछे पीछे जाता है, परदा उठता है।]

छठा दृश्य

स्थान—विजयसिंह देवके राज-प्रासादकी दालान

समय—रात्रि

[विजयसिंह देव और चण्डपीड दो आसंदियोंपर बैठे हैं। चण्डपीड सैनिक वेषमें है।]

विजयसिंह देव—(लम्बी साँस लेकर) कल त्रिपुरीपर शत्रुओंका आक्रमण होगा। पर तुम क्या करो? तुम तो दिन-रात जो कुछ तुमसे होता है, करते ही हो। कवच और शस्त्र तक नहीं उतारते।

चण्डपीड—हाँ, श्रीमान्, परन्तु अब भी मैं निराश नहीं हूँ। परम भट्टारकसे भी प्रार्थना करता हूँ कि श्रीमान् भी चिंतित न हों।

विजयसिंह देव—यह कैसे, चण्डपीड ?

चण्डपीड—सूचना आ गई है कि कुतुबुद्दीन ऐबकने हम लोगोंकी सहायताके लिए सेना बिदा कर दी है, जो कलतक अवश्य आ जायगी।

विजयसिंह देव—और वह कलतक न आई तो ?

चण्डपीड—इसीलिए तो कल रण-क्षेत्रपर श्रीमान्‌को ले चल रहा हूँ। यदि वह सेना न भी आई तो भी परम भट्टारकके दर्शन करते ही यदुरायके भट सहम उठेंगे।

विजयसिंह देव—अच्छा !

चण्डपीड—वे भी तो महाकोशलके निवासी हैं न। जब महाकोशलके अधिपतिको देखेंगे तब हमारी सेनापर उनके हाथ नहीं उठेंगे।

विजयसिंह देव—(कुछ सोचते हुए लम्बी साँस लेकर) पर, चण्डपीड, न जाने क्यों अब मेरे हृदयमें विजयकी बहुत कम आशा है।

चण्डपीड—इस प्रकारके भाव अनेक बार हृदयमें उठते हैं, महाराज, पर उनका सदा दमन करना चाहिए। मैं श्रीमान्‌से पुनः प्रार्थना करता हूँ कि परम भट्टारक चिंतित न हों। आपका और आपके पूर्वजोंका पुण्य-प्रताप ही ऐसा है कि त्रिपुरीका पतन होना असम्भव है। चलिए, महाराज, अभी तो सभाभवनमें पधारिए। आज पूर्वकी नर्तकियोंका गायन है, और जब श्रीमान् कल रणक्षेत्रपर पधारें तब पूर्ण आशापूर्ण उत्साहके साथ, क्योंकि सबसे बड़ी निर्बलता निर्बलताका प्रदर्शन है।

[दोनोंका प्रस्थान। दो दास आकर आसंदियाँ उठा ले जाते हैं। परदा उठता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—त्रिपुरी नगरकी सीमापर युद्ध-क्षेत्र

समय—सन्ध्या

[इधर उधर कई लाशें और मनुष्य, घोड़े और हाथियोंके कटे हुए अंग पड़े हैं। रथके चक्के और कई भाग भी टूटे हुए पड़े हैं। बहुत-से आयुध भी बिखरे हुए हैं। सन्ध्याके प्रकाशसे सारा दृश्य प्रकाशित है। एक ओरसे चण्डपीड और देवदत्तका कुछ सैनिकोंके साथ शीघ्रतासे प्रवेश। सैनिकोंमें अनेक सैनिक एक साथ ही कह रहे हैं 'यह यदुराय है' 'कहाँ है यदुराय?' 'यही यदुराय है'। दूसरी ओरसे अकेले यदुरायका प्रवेश। सभी लोग शरीरपर कवच और सिरपर शिरस्त्राण और आयुधोंसे सुसज्जित हैं।]

चण्डपीड—(यदुरायको देख सैनिकोंको ललकार कर) यह लो यह यदुराय है। घेर लो, इसे। जाने न पाये। बड़ी कठिनाईसे हाथ लगा है।

यदुराय—मैं भागनेवाला नहीं। शत्रु सेनाको मारते और चीरते हुए थोड़ा अधिक आगे बढ़ आया, इसीसे तुम दुष्टोंको यह अवसर मिल गया। पर कोई हानि नहीं, अकेला ही तुम सबोंके लिये पर्याप्त हूँ।

[सब सैनिक यदुरायको घेरकर एक साथ प्रहार करते हैं। वह अकेला सबसे युद्ध करता है, और शनैः शनैः अनेक सैनिकोंको मारता है। शेष भाग जाते हैं। अब चण्डपीड और देवदत्त यदुरायसे युद्ध करते हैं। रेवासुन्दरी और विन्ध्यबालाका प्रवेश। दोनोंके हाथमें शस्त्र हैं।]

देवदत्त—(विन्ध्यबालाको देखकर और चिल्लाकर) ओह! विन्ध्यबाला! विन्ध्यबाला! अन्तमें तुम आ ही गईं?

[देवदत्त काँपने लगता है। उसके हाथकी ढाल छूटकर गिर पड़ती है। उसी समय यदुरायका खड्ग कवचको तोड़ता हुआ जोरसे उसकी गरदनपर पड़ता है। देवदत्त धराशायी होता है। विन्ध्यबाला दौड़कर उसका शव गोदमें उठा लेती है। रेवासुन्दरी चण्डपीडपर शल्य चलाती

है। वह यदुरायके आघातोंको बचा रहा है, अतः रेवासुन्दरीके शल्यको नहीं बचा पाता, वह जोरसे कवचको तोड़ते हुए उसके वक्षःस्थलको छेद देता है और वह भी धराशायी हो जाता है। विजयसिंहदेवका प्रवेश। यदुराय उनकी ओर बढ़ता है।]

रेवासुन्दरी—(बीचमें आकर) प्राणेश, ये मेरे पिता हैं, प्यारे पिता!

[सुरभी पाठकका प्रवेश।]

सुरभी पाठक—बस यदुराय, वीरवर यदुराय, विजयी यदुराय, बस।

[यदुराय रुक जाता है।]

यवनिका पतन

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—विजयसिंह देवके राज-प्रासादकी दालान

समय—प्रातःकाल

[यदुराय और नागदेव दो आसंदियोंपर बैठे हैं।]

नागदेव—कहो मित्र, अब तो कुलीनोंपरका क्रोध शांत हुआ?

यदुराय—सर्वथा। चण्डपीडके वध, परम भट्टारक विजयसिंहके बन्दी तथा त्रिपुरीके विजय होनेपर क्रोध दूर न होता तो कब होता?

नागदेव—परन्तु अब भी तुम सुखी नहीं दीखते?

यदुराय—मुझे सुख कदाचित् इस जीवनमें मिलना सम्भव नहीं है।

नागदेव—(उदास होकर) यह क्यों, मित्र?

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) अब मुझे अपने ऊपर ही ग्लानि आने लगी है।

नागदेव—अच्छा, तुमने तो ऐसा कोई काम नहीं किया?

यदुराय—किया है, नागदेव, किया है। इस क्रोध और प्रतीकारके आवेशमें आकर कुछ ऐसी बातें कर डाली हैं कि वे अब निरन्तर मेरे नेत्रोंके सम्मुख घूमती रहतीं हैं, मुझे सुखी नहीं होने देतीं।

नागदेव—कैसी, मित्र?

यदुराय—तुम जानते हो, युद्धके पूर्व और युद्धके समय रेवासुन्दरीकी ओरसे कई बार विन्ध्यबाला मेरे निकट आई थीं।

नागदेव—आई थीं, जानता हूँ।

यदुराय—और यह भी जानते हो कि एक दिन उनके विशेष आग्रहके कारण मैं रेवासुन्दरीसे मिलने उनके उद्यानमें गया था।

नागदेव—हाँ, यह जानता हूँ, वहाँ जो कुछ हुआ था, वह भी तुमने मुझे बताया था।

यदुराय—मैंने उस दिन रेवासुन्दरीके साथ ऐसा व्यवहार किया जो किसी भी उच्च हृदय मनुष्यके लिए नीच व्यवहार कहा जायगा।

नागदेव—मैंने तो उसी दिन तुमसे यह बात कही थी, परन्तु तुमने नहीं माना।

यदुराय—आज मानता हूँ। मैं उस दिन कुलीनोंपर इतना क्रुद्ध था, उनसे बदला लेनेकी भावना हृदयमें इतनी प्रबल थी, कि मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी। अब जब उस बातका स्मरण करता हूँ तब हृदयपर साँप-सा लोट जाता है। यद्यपि रेवासुन्दरी इसी प्रासादमें हैं पर उनके समीप जाने तकका साहस नहीं होता।

नागदेव—यह उनके साथ अब दूसरा, उससे भी बड़ा, अन्याय हो रहा है।

यदुराय—यह भी जानता हूँ, पर मुझे रेवासुन्दरीको अपना मुख दिखानेमें लज्जा आती है। एक यही बात तो नहीं, मैंने अपनी नीचताके और भी परिचय दिये हैं।

नागदेव—क्या मित्र?

यदुराय—अंतिम युद्धके दिन जब चण्डपीडके वधके उपरान्त

विजयसिंह देव युद्धक्षेत्रपर आये तब क्रोध और प्रतीकारके वशीभूत होकर मैं उनपर भी प्रहार करनेको अग्रसर हुआ था। वह तो रेवासुन्दरी बीचमें आ गई और उसी समय गुरुदेव आ गये, नहीं तो एक और अनर्थ हो जाता।

नागदेव—हाँ, सारे पापोंका मूल तो चण्डपीड था। उसका वध हो चुका था।

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) फिर इन सबसे कहीं बुरी एक और बात मेरे द्वारा हो गई।

नागदेव—वह क्या ?

यदुराय—(फिर लम्बी साँस लेकर) विन्ध्यबालाके पति देवदत्तका मेरे ही हाथों निधन हुआ।

नागदेव—परन्तु, मित्र, वह तो युद्धका अवसर था। चण्डपीड और वह दोनों ही तुमपर आक्रमण कर रहे थे। चण्डपीडके साथ वह भी युद्धमें मारा गया।

यदुराय—मानता हूँ, परन्तु विन्ध्यबालाके कारण मुझे देवदत्तका विशेष ध्यान रखना चाहिए था। नागदेव, तुम विन्ध्यबालाको अच्छी तरह नहीं पहचानते। उसे तो मैं आजीवन अपना मुख न दिखा सकूँगा।

[विधवा विंध्यबालाका प्रवेश। वह सिरसे पैर तक एक श्वेतवस्त्र धारण किये हुए है। कोई आभूषण नहीं है। कमरमें एक खड्ग बंधा हुआ है। नेत्रोंमें अश्रु हैं]

विन्ध्यबाला—आप मुझे मुख न दिखाएँगे तो मैं आपके दर्शनार्थ आई हूँ, वीरवर। (विन्ध्यबालाको देख यदुराय और नागदेव खड़े हो जाते हैं।) आप क्यों मेरे लिए दुखी होते हैं ! मेरे प्राणेशके निधनमें आपका

नहीं मेरा दोष है। यदि मैं उस दिन युद्ध-क्षेत्रमें न आती, और और उनकी भावुकताके कारण ढाल उनके हाथोंसे छूटकर न गिर जाती, तो कदाचित् उनके प्राण बच जाते। पर उस सारे दृश्यको आप भूल जाइए। मैं आपको वैसा ही समझती हूँ, ठीक वैसा ही। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ, मेरे हृदयमें आपके लिये कोई क्रोध, कोई घृणा, कोई बुरी भावना नहीं है।

यदुराय—(आँखोंमें अश्रुभर काँपते हुए गद्गद स्वरमें) देखा, नागदेव, देखा। यह विन्ध्यबालाकी महत्ता है, यह नारी-हृदयकी उच्चता और उदारता है! इस क्षमामें जो महत्ता है, जो औदार्य है, वह क्रोध और प्रतिकारमें कहाँ? प्रतिहिंसा हिंसापर ही आघात कर सकती है, उदारतापर नहीं। आज मुझे इस ज्ञानका अनुभव हो रहा है। (विध्यबालासे) देवी, आप सचमुच मानवी नहीं, देवी हैं। यह यदुराय आपके सम्मुख अपनेको बहुत छोटा पाता है। (विध्यबालाके पैरोंपर गिर पड़ता है।)

विन्ध्यबाला—(यदुरायको उठाते हुए) वीरवर, आप क्या कह रहे हैं? क्या कर रहे हैं? परन्तु नहीं, मुझे इस बातका हर्ष है कि आपने क्षमाको पहिचान अपने एक महान् दोषको खो दिया। आपकी अपूर्व वीरताके संग क्षमाका संयोग सुवर्णके संग सुगंधके संयोगके समान है। अच्छा आप मेरी सखिके पास चलिए। उसे आपने बड़ा कष्ट दिया है।

यदुराय—अच्छा, वहाँ भी मुझे अपनी लघुता स्वीकार करनेके लिए अभी चलना होगा!

विन्ध्यबाला—अवश्य, क्या उसे और कष्ट देनेकी इच्छा है?

अभी तत्काल चलना होगा, क्योंकि फिर हम सभीको सीमापर प्रस्थान करना है। आपने सुना नहीं, कुतुबुद्दीन ऐबककी सेना महाकोशलकी ओर बिदा हो गई है। देशकी स्वतंत्रताका सच्चा संग्राम होना तो अभी बाकी ही है।

यदुराय—अच्छा, कुतुबुद्दीनकी सेना आ रही है?

विन्ध्यबाला—हाँ, मैं अभी सुनकर आई हूँ। महामंत्रीजीके पास गुप्तचर अभी संवाद लाये हैं। (कुछ ठहरकर) तो फिर चलिए, शीघ्र ही मेरी सखिके तप्त हृदयको शान्त कीजिए।

[एक ओर यदुराय और विन्ध्यबाला तथा दूसरी ओर नागदेवका प्रस्थान। दो दास आकर आसंदियाँ उठाकर ले जाते हैं। परदा उठता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान—एक जंगली मार्ग

समय—सन्ध्या

[मुसलमानोंके दो सिपहसालार और कई सैनिक खड़े हैं। सभी सैनिक वेषमें हैं और उसी प्रकारके कवच एवं आयुध धारण किये हैं जैसे हिन्दू सैनिक। सबके दाढ़ी है।]

एक सिपहसालार—इन गोंड़ोंने तो गजब कर डाला!

दूसरा सिपहसालार—इतने दिनों तक जंग! नाकों दम हो गया।

पहिला सिपहसालार—ताज्जुबकी बात है। न तो इनके पास जंगके पूरे कपड़े हैं और न हथियार। फिर भी इनमें हिन्दोस्तानके बादशाहसे जंग करनेकी यह हिम्मत!

दूसरा सिपहसालार—पर बात तो यह है कि गोंड़ोंके साथ दूसरी कौमें भी शामिल हैं।

पहला सिपहसालार—फिर यह भी सुना जाता है कि इनके सब सिपाहियोंको तनख्वाह नहीं मिलती! लूटपाट भी नहीं! मुफ्तमें जान देनेको फौजमें भरतीं होते हैं!

दूसरा सिपाहसालार—औरतें तक मदद करती हैं, जनाब! उस रेवासुन्दरी और विन्ध्यबालाका किस्सा नहीं सुना है? दिन-रात घूम घूम कर जंगके लिए आदमी और सोना-चाँदी इकट्ठा करती हैं। उन्हें देख औरतें तक अपने जेवरात उतारकर जंगके खर्चके लिए दे देतीं हैं। फिर वे जंगमें खुद लड़ती हैं, घायलोंकी खिदमत करती हैं!

पहला सिपहसालार—दिल्लीसे त्रिपुरीकी मदद करने आये थे और लेनेके देने पड़ गये। पर आज जो खत आया वह आपने तो देखा ही है। गोरमें शहाबुद्दीनके इन्तकाल फरमानेसे अब दिल्लीमें भी बलवेके अंज़ाम दिखाई दे रहे हैं, अब तो शायद वहाँसे लौटनेका हुक्म आ जाय।

दूसरा सिपहसालार—जितना लश्कर यहाँ है उससे तो इन शैतानोंपर फतह हासिल करना भी मुश्किल मालूम होता है।

पहला सिपहसालार—हिन्दोस्तानमें कहीं भी ऐसा जंग नहीं करना पड़ा। सचमुचमें गोंड़ आफतके परकाले निकले।

दूसरा सिपहसालार—पर हम तो सिर्फ त्रिपुरीके राजाकी मददको आये थे क्योंकि उसने हमारे बादशाहसे सुलह कर ली थी। जब उसने इन गोंड़ोंसे हार मान ली तब हमारी बलासे।

पहला सिपहसालार—हाँ, हम क्यों मरें-कटें?

दूसरा सिपाहसालार—मुझे यकीन है कि दिल्लीसे जल्दी ही हमारे लौटनेका हुक्म आयेगा।

एक सिपाही—हुजूर मुआफ करें तो एक बात अर्ज करूँ ?

पहिला सिपहसालार—हाँ, हाँ, जरूर ।

वही सिपाही—इनका सिपाहसालार जो यदुराय है, सुनते हैं, उसको हिन्दुओंके एक ख़ुदा भैरवने पैदा किया है ।

पहला सिपहसालार—एक ख़ुदाका क्या मतलब ?

वही सिपाही—इनके यहाँ तो कई ख़ुदा होते हैं न सरकार ।

पहला सिपहसालार—अच्छा, अच्छा, समझा । हाँ, तो, उसे भैरव ख़ुदाने पैदा किया है ?

वही सिपाही—हाँ, हुजूर, और उस ख़ुदाकी करामात कालीने उसे ताक़त दी है ।

पहला सिपहसालार—ख़ुदाकी करामात काली क्या ?

वही सिपाही—जनाबे आली, इनके मज़हबमें ख़ुदा अलहिदा होते हैं और इनकी करामातें अलहिदा ।

पहला सिपहसालार—खूब ! तो उस यदुरायको भैरव ख़ुदाने पैदा किया और उस ख़ुदाकी करामात कालीने उसे ताकत दी, क्यों ?

वही सिपाही—हाँ हाँ, हुजूर, यही सुना जाता है ।

दूसरा सिपहसालार—यह सब वाहियात बातें हैं ।

दूसरा सिपाही—लेकिन सरकार उसने त्रिपुरीके राजाको शिकस्त दी और हम लोग भी अब तक फतह हासिल नहीं कर सके ।

दूसरा सिपहसालार—इसके दूसरे सबब हैं; न कि यह कि यदुरायको भैरव ख़ुदाने पैदा किया और उसकी करामात कालीने उसे ताकत दी ।

[नेपथ्यमें 'महाकोशलके महा-सेना पतिकी जय' 'महाकोशलकी जय' शब्द होते हैं ।]

तीसरा सिपाही—यह देखिए, हुजूर ? गोंड़ लोग शोर मचा रहे हैं।

चौथा सिपाही—इसी तरह शोर मचाकर ये जंग करते हैं।

पहला सिपाही—और सुना है, सरकार कि जब ये इस तरह शोर मचाते हैं तब इनके यदुरायमें जो खुदा भैरव और उसकी करामात काली रहती है उसकी ताकत इन शोर मचानेवालोंको भी मिल जाती है।

पहला सिपहसालार—तो वह खुदा भैरव और उसकी करामात काली यदुरायके जिस्मके भीतर रहते भी हैं ?

दूसरा सिपहसालार—अरे तुम लोग इन वाहियात, और बे-सिर-पैरकी बातोंको सुन सुनकर दीवाने तो नहीं हो गये हो ? जिस तरह हम लोग 'दीन दीन' का नारा लगाते हैं उसी तरह यह—'महाकोशलकी जय' का नारा लगाते हैं। महाकोशल उनके मुल्कका नाम है।

पहला सिपहसालार—फिर उनके खुदा और करामातें तो वे ही हैं न जिनमेंसे न जाने कितनोंको हम तोड़ फोड़ चुके हैं !

[एक सिपाहीका प्रवेश]

पहला सिपहसालार—कहो, जंगका क्या हाल है !

आगन्तुक—सब ठीक है, हुजूर।

दूसरा सिपहसालार—कैसा, जरा सब बातें बताओ !

आगन्तुक—सिर्फ सिपहसालार दिलेरखाँ मारा गया।

दूसरा सिपहसालार—और ?

आगन्तुक—और सब दुरुस्त है। पूरबकी तरफका लश्कर जरूर कुछ पीछे हटा है।

पहला सिपहसालार—और पछाँहका !

आगन्तुक—वह तो बहुत पीछे हट गया।

दूसरा सिपहसालार—और उत्तरका ?

आगन्तुक—वहाँ तो अब अपना लश्कर नहीं है।

दूसरा सिपहसालार—कहाँ गया ?

आगन्तुक—भाग गया, हुजूर, कहाँतक दक्खिनके लश्करके मुआफिक जान देता !

पहला सिपहसालार—तो दक्खिनके लश्करका क्या हुआ ?

आगन्तुक—सब मारा गया, सरकार।

दूसरा सिपहसालार—फिर सब कुछ ठीक क्या है ? खाक ठीक है ?

पहला सिपहसालार—चलिए हम लोगोंको खुद चलकर देखना चाहिए।

दूसरा सिपहसालार—चलिये।

[सबका प्रस्थान। परदा उठता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान—युद्धक्षेत्र

समय—सन्ध्या

[दृश्य प्रायः वैसा ही है जैसा दूसरे अंकका अंतिम दृश्य था। अकेला नागदेव अनेक शत्रु-सैनिकोंसे घिरा हुआ युद्ध कर रहा है। बहुत देर तक युद्ध होता है। अनेक सैनिकोंको नागदेव मारता है और अन्तमें बुरी तरह आहत होकर गिरता है। अनेक गोंड़ और क्षत्रिय सैनिकोंका प्रवेश। नागदेवको गिरा देख कई भागनेको उद्यत होते हैं।]

एक गोंड़ सैनिक—(साथियोंके भागनेपर उद्यत देख कड़ककर) सेनों-

पतिका पतन देख भाग रहे हो ? सावधान हम सेनापतिके लिए नहीं देशके लिए युद्ध कर रहे हैं। स्मरण नहीं है, हमने वीरवर यदुरायके अभिषेकके समय क्या प्रतिज्ञा की थी ?

[सब लौट आते हैं और 'महाकोशलकी जय' कहकर मुसलमानोंपर टूट पड़ते हैं। बहुत देर तक युद्ध होता है। मुसलमान सैनिक भागते और ये उनका पीछा करते हैं। अनेक सैनिकोंके संग यदुरायका प्रवेश। वह गिरे हुए नागदेवको देख दौड़कर उसके निकट जाता है और उसका सिर गोदमें ले ढालसे उसके मुँहपर हवा करते हुए बोलता है।]

यदुराय—प्यारे मित्र नागदेव, बोलो, बोलो, बन्धु, जिसे तुम अपना प्यारा भाई, अपना सखा, अपना सर्वस्व कहते थे उससे भी न बोलोगे ? आह! तुम्हें क्या हो गया! क्या हो गया, मित्र!

नागदेव—(आँखें खोलकर धीरेसे) कौन, यदुराय! प्यारे मित्र यदुराय, (यदुरायके गलेमें हाथ डालकर) मेरे सर्वस्व, मुझे बड़ा हर्ष है कि मरते समय तुम भी मुझे मिल गये, बन्धु।

यदुराय—(आँसू गिराते हुए) क्या कह रहे हो, यह तुम क्या कह रहे हो, मित्र ? क्या यह यदुराय पृथ्वीपर बिना नागदेवके जीवित रह सकता है ?

नागदेव—वीरोंके मुखसे ऐसे वाक्य! ये वाक्य तुम्हें शोभा नहीं देते, सखा। मेरे सदृश मृत्यु कितने बड़भागियोंकी होती है ? मुझे देशोद्धारमें अपने प्राणोंकी बलि चढ़ानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। संसारमें किस किसको यह सौभाग्य प्राप्त होता है ? तुम मेरे लिए दुःखी हो रहे हो! जिसके लिए सुखी होना चाहिये उसके लिए दुखी हो रहे हो! (कुछ ठहरकर) बन्धु, बहुत प्यास लगी है, कहीं जल मिलेगा ?

[एक सैनिक दौड़कर जाता है। पानी लेकर आता है। यदुराय अपने हाथसे थोड़ा थोड़ा जल नागदेवको पिलाता है।]

नागदेव—(कुछ क्षण पश्चात् अत्यन्त क्षीण स्वरमें) अच्छा प्यारे सखा, अब....चलनेमें विशेष विलम्ब नहीं;....तुम्हारे दर्शन भी हो........ तुम्हारे, हाथोंसे पानी भी....देखो, दुखमें अपना धर्म, अपना कर्तव्य ....विदेशियोंको देशसे निकाल....तब विश्राम....मण्डलाके राज्यके अब तुम्हीं अधिपति....प्यारे बन्धु,....जय शिव।

[नागदेवकी मृत्यु। यदुराय रो पड़ता है।]

यदुराय—(नागदेवके शवको देखते हुए कुछ देर पश्चात् लम्बी साँस लेकर रुँधे कण्ठसे) गोंड़ोंके सर्वश्रेष्ठ पुरुष, महाकोशलके उच्चतम् हृदय चल दिये। उस प्रकार गये जिस प्रकारका जाना बहुत कम बड़भागियोंको मिलता है। तुम तो चले गये बन्धु, इस मन्दभागीको छोड़ गये; आजन्म तुम्हारी एक एक बात, एक एक कृति, एक एक उपकार स्मरण करनेके लिए छोड़ गये। ऐसी मित्रता संसारमें किसमें होती है? अपनेको, अपने राज्यको आपत्तिमें डाल मुझे आश्रय दिया। राजा होकर मुझ दरिद्रीकी प्रसन्नता, मुझ निर्धनके भावोंका ध्यान रखते थे और चौसठों घड़ी मेरे मुखकी ओर देखते थे और अन्तमें अपना राज्य भी मुझे दे गये! हाय! हाय! यह संसार मेरे लिए शून्य हो गया। कौन जगतमें मेरा इतना ध्यान रक्खेगा? कौन विश्वमें मुझसे इतना प्रेम करेगा? (कुछ ठहरकर क्रोधसे) विदेशियोंने इस देशके रत्नकी हत्या की है। एकको अनेकने मिलकर मारा है। (दाँत पीसकर) इस सर्वश्रेष्ठ गोंड़की,—महाकोशलके सर्वोच्च प्रेमीकी, विदेशियोंने हत्या की है। देखूँ, अब ये महाकोशलकी

सीमामें कितने दिन रह सकते हैं ?

[नेपथ्यमें ' दीन दीन ' शब्द होता है । यदुराय खड़ा होकर धनुष्य बाण सम्हालता है ।]

यदुराय—(सामने देखते हुए सैनिकोंसे) देखो, वे आ रहे हैं, सामनेसे ही आ रहे हैं । मारो, चलाओ बाण । एक भी न बचने पाये । नागदेवके हत्यारोंमेंसे एक भी शेष न रहे ।

[यदुराय और सैनिक बाण चलाते हैं । परदा गिरता है ।]

चौथा दृश्य

स्थान—त्रिपुरीका राज-पथ

समय—संध्या

[दूरपर बौद्ध शिल्पकलाके ऊँचे ऊँचे भवन, मन्दिर आदि दिखाई देते हैं । चौड़ा मार्ग है । चार पुरवासियोंका प्रवेश । सभी उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हैं । त्रिपुण्ड लगाये और आभूषण भी पहिने हैं ।]

एक—देखा बन्धु, अकुलीन गोंड़ोंने क्या कर दिखाया ?

दूसरा—हाँ, बन्धु, उन्होंने वह किया जिसे इस देशका कोई क्षत्रिय भी न कर सका था ।

तीसरा—क्षत्रियोंकी भी तो सहायता थी ?

पहला—कौन कहता है नहीं ? सारे देशकी सहायता थी, पर नेतृत्व तो गोंड़ोंका ही था ।

चौथा—विदेशियोंसे इस प्रकार किसीने अपने देशकी रक्षा न की ।

पहला—जिसमें नागदेवके वधके पश्चात् तो यदुरायमें ऐसी शक्ति आई जो कभी देखी तो क्या पढ़ी और सुनी भी न थी ।

दूसरा—शूरोंका दुख भी अद्भुत होता है। वे कायरोंके समान शोकमें भी अकर्मण्य होकर बैठे बैठे रोते नहीं।

तीसरा—अब मुसलमानोंके इधर आनेकी सम्भावना भी नहीं है।

पहला—क्यों ?

तीसरा—तुमने नहीं सुना ? गोरमें शहाबुद्दीनका देहावसान हो गया है और कुतुबुद्दीन स्वयं दिल्लीके सिंहासनपर बैठनेका प्रयत्न कर रहा है।

पहला—अच्छा ?

तीसरा—वहाँकी गड़बड़के कारण उसे इस ओर देखनेका अवसर ही न मिलेगा।

चौथा—यदि वे आवें तो हम लोग उनके लिए तैयार भी हैं।

तीनों—हाँ, हाँ, सो तो है ही, पर....पर....

[कुछ देरतक चारों चुप रहते हैं]

पहला—युद्धमें रेवासुन्दरी और विन्ध्यबालाने भी अद्भुत कार्य किया।

दूसरा—इसमें क्या सन्देह है। यदि उन्होंने इतना कार्य न किया होता तो इतने भट और इतना धन मिलना असम्भव था।

तीसरा—फिर उन्होंने स्वयं युद्ध किया।

दूसरा—और आहतोंकी कितनी सेवा की !

चौथा—निस्सन्देह, महाकोशलमें ये दो देवियाँ उत्पन्न हुई हैं।

दूसरा—जिसमें विन्ध्यबाला तो साक्षात् देवी है। देशोद्धारके सम्मुख अपने वैधव्यके दुःखकी ओर भी न देखा।

तीसरा—और हम गुरुदेवको तो भूले ही जा रहे हैं।

दूसरा—उसी अक्षय तृतीयाको जिस दिन चण्डपीडका रेवासुन्दरीसे विवाह और उसका युवराज पदपर राज्याभिषेक होता।

तीसरा—फिर ये दोनों कार्य स्वयं परम भट्टारक विजयसिंह देव अपने हाथसे करेंगे।

दूसरा—वे ही विजयसिंह देव जो चण्डपीडका करनेवाले थे।

चौथा—कैसा अद्भुत संसार है!

तीसरा—परन्तु ये दोनों कार्य त्रिपुरीके राजप्रासादमें न होकर धुआँधारपर क्यों हो रहे हैं?

चौथा—इसका कारण किसीको भी ज्ञात नहीं।

पहला—मैंने कई सज्जनोंसे पूछा पर कोई कुछ नहीं बताता।

दूसरा—सत्य ही आश्चर्यकी बात है।

तीसरा—हाँ, इतना अवश्य ज्ञात हुआ है कि परम भट्टारककी इच्छासे ये कार्य धुआँधारपर हो रहे हैं।

चौथा—सो तो मैं भी जानता हूँ, पर क्यों हो रहे हैं, यह नहीं जानता।

तीनों—कोई भी नहीं जानता।

[कुछ देर चारों चुप रहते हैं]

तीसरा—महामंत्री अब भी सुरभी पाठक ही रहेंगे, क्यों?

चौथा—अवश्य। उनसे अच्छा मंत्री मिल भी कौन सकता है?

पहला—इस अवस्थामें भी उनमें कितनी शक्ति है?

दूसरा—और कैसी त्यागपूर्ण रहन-सहन है! फिर उसी छोटी-सी कुटीमें वे रहेंगे और वही मोटा वस्त्र और मोटा भोजन उपयोगमें लायेंगे।

तीसरा—सारे राज्यका वैभव अधिकारमें होते हुए भी इस प्रकार जीवन-यापन ही तो ब्राह्मणोंका आदर्श है।

तीनों—हाँ हाँ, सो तो है ही।

[कुछ देर चारों चुप रहते हैं]

पहला—देखना है, यह नवीन गोंड़ राज्य, प्रजाके लिए कैसा होता है।

दूसरा—जो राज्य ऐसे वीरों और त्यागियोंके हाथोंमें होगा, उसके उत्तम होनेमें सन्देह ही क्या हो सकता है। अच्छा चलो तो फिर राज-भवन ही चलें।

तीनों—चलो, वहाँ कदाचित् अन्य कुछ बातोंका पता चले।

[सबका प्रस्थान। परदा उठता है]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—विजयसिंह देवके राज-प्रासदाकी दालान

समय—प्रातःकाल

[रेवासुन्दरी एक आसंदीपर बैठी हुई गा रही है और कई आसंदियाँ इधर उधर रखी हैं। आज वह अत्यन्त बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण किये हैं। सिरपर विवाहका मौर बँधा है।]

गान

ऊषाके अरुण कपोलोंकी,
लालीमें डूबा मधु प्रभात,
नलिनीके कानोंमें गूँजी,
अलिगणकी मीठी सुखद बात।

सुमनोंके दल खिल खिल उठते
सखि ! किसके अभिनन्दनमें ?
मनका मकरन्द ढुला पड़ता
किनके चरणोंके वन्दनमें ?
जीवनके सपने दीप सजाते
सुख-सुहागकी थालीमें
हृदय-कमलके दल डूबे सखि !
किस कुकुमकी लालीमें ?

[विन्ध्यबालाका प्रवेश। उसका वही भेष है जो वैधव्यके पश्चात् था। कटिसे वहीं खड्ग लटक रहा है।]

रेवासुन्दरी—(खड़े होकर) सखि, तुम मानवी नहीं, देवी हो।

विन्ध्यबाला—(एक आसंदीपर बैठते हुए) और यही यदि मैं तुम्हारे लिए कहूँ तो?

रेवासुन्दरी—(दूसरी आसंदीपर बैठते हुए) वह अतिशयोक्ति होगी।

विन्ध्यबाला—क्यों ?

रेवासुन्दरी—एक तो इसलिए कि मैं ऐसी हूँ नहीं, दूसरे जैसी भी हूँ तुम्हारी बनाई हुई हूँ।

विन्ध्यबाला—मनुष्य किसीको कुछ भी बनानेकी शक्ति नहीं रखता, बनानेवाले भगवान् हैं। (कुछ ठहरकर) अच्छा, अब यह कहो कि तुम जो चाहतीं थीं सब हो गया ?

रेवासुन्दरी—(आँखोंमें आँसू भरकर) मेरा तो सब हो गया, सखि, पर तुम्हारा सब खो गया। (लम्बी साँस लेती है।)

[विन्ध्यबालाकी आँखोंमें भी आँसू भर आते हैं। वह कुछ देर चुप रह इधर उधर टहलने लगती है।]

विन्ध्यबाला—(आँखें पोंछकर) देखो राजकुमारी, इसका दुःख न करो। जब मैं तुम्हें मेरे लिए दुखी देखती हूँ तब मेरा दुःख और बढ़ जाता है। (कुछ ठहरकर) अच्छा देखो, मैं तुमसे कुछ बातें और कह देना चाहती हूँ।

रेवासुन्दरी—कह देना चाहती हो, इसका अर्थ? सदा कहती ही रहोगी।

विन्ध्यबाला—अच्छा सुनो तो, देशका उद्धार हो गया। महाकोशल अब परतंत्र नहीं है। विदेशी इस देशकी सीमाके बाहर चले गये। तुम्हारे पिताके प्राण भी बच गये। आज तुम्हारा विवाह भी, जिनके साथ तुम चाहती थीं, हो जायगा और वे महाकोशलके सम्राट् तथा तुम पट्ट महादेवी हो जाओगी। तुम्हें स्मरण है, एक दिन एकादशीको बन्दर-कूदनीपर तुमने प्रतिज्ञा की थी कि संसारके भेद-भावका नाश तुम्हारा कार्य होगा?

रेवासुन्दरी—अक्षरशः स्मरण है, सखि, वह दिवस मैं जीवनमें कभी भूल सकती हूँ?

विन्ध्यबाला—ठीक। तो अब उस प्रतिज्ञाको कार्यरूपमें परिणत करनेका तुम्हें पूरा पूरा अवसर प्राप्त होगा।

रेवासुन्दरी—अवश्य ही प्राप्त होगा।

विन्ध्यबाला—परन्तु संसारमें प्रायः यह होता है कि सत्ता और सुख मिलनेके पूर्व मनुष्य बहुतसे बड़े बड़े शुभ संकल्प किया करता है, पर जहाँ सत्ता प्राप्त हुई और सुख मिला कि सब संकल्पोंको विस्मृत कर उस सुखमें लिप्त हो जाता है और उस सत्ताका उपयोग अपने सुखकी पूर्तिके लिए करने लगता है।

रेवासुन्दरी—तुम समझती हो, मैं भी ऐसी हो जाऊँगी?

विन्ध्यबाला—यह मैं नहीं कहती। मैं जानती हूँ कि भगवानने तुम्हारा हृदय दूसरी प्रकारका बनाया है, पर फिर भी मैं तुम्हें सावधान कर देना चाहती हूँ।

रेवासुन्दरी—सावधान तो तुम्हें सदा ही करना पड़ेगा।

विन्ध्यबाला—यह भी मैं जानती हूँ कि तुम्हारे पति, महामंत्रीजीकी सम्मतिसे राज-कार्य बड़ी उत्तमतासे चलायेंगे, परन्तु जो राज्य केवल पुरुषोंके हाथमें रहता और केवल नियमोंके अनुसार ही चलता है, उसमें हृदय,—और विशेषकर नारी-हृदयकी कोमलतासे जो एक प्रकारके कार्य हो सकते हैं, उनका अभाव रह जाता है।

रेवासुन्दरी—यह तो सत्य है।

विन्ध्यबाला—पट्ट महादेवीके पदसे अपने स्वाभाविक कोमल हृदय-द्वारा जब तुम प्रजाकी सेवा करोगी तब तुम्हारे राज्यमें वह अभाव भी न रह जायगा।

रेवासुन्दरी—और तुम सदा मार्ग बताती ही रहोगी, सखि!

विन्ध्यबाला—अब उसकी आवश्यकता नहीं रह गई, राजकुमारी, मेरा इस संसारका कार्य पूरा हो गया।

रेवासुन्दरी—(घबराकर) इसका क्या अर्थ?

विन्ध्यबाला—यह आज तुम्हारे विवाहके पश्चात् बताऊँगी।

रेवासुन्दरी—(कुछ सोचते हुए) और सखि, इस खड्गको तुम सदा अपने पास क्यों रखती हो?

विन्ध्यबाला—यह मेरा नहीं, मेरे प्राणेश्वरका है।

रेवासुन्दरी—इससे क्या? विदेशियोंके संग युद्धमें तुमने इसका

उपयोग कर स्वर्गमें इसका श्रेय उन्हें प्राप्त करा दिया। अब इसका क्या प्रयोजन है ?

विन्ध्यबाला—अभी इसका एक उपयोग और शेष है।

रेवासुन्दरी—वह क्या ?

विन्ध्यबाला—वह भी तुम्हें विवाहके पश्चात् बताऊँगी।

रेवासुन्दरी—(और भी घबराकर) तुम्हारी बातोंसे तो मुझे बड़ा भय लगता है, विन्ध्यबाला !

विन्ध्यबाला—जो वीरबाला युद्ध-क्षेत्रमें भयंकर युद्ध कर आई है उसे एक स्त्रीकी बातोंसे भय लगता है, यह क्या कहती हो, राजकुमारी ?

[सुरभी पाठक और यदुरायका प्रवेश। यदुराय भी आज कौशेय वस्त्रों और आभूषणोंसे सुसज्जित है। उसके सिरपर भी मौर बँधा है। यदुरायको देख रेवासुन्दरी खड़े होकर लज्जासे सिकुड़ एक ओर खड़ी हो जाती है। विन्ध्यबाला भी खड़ी हो जाती है।]

सुरभी पाठक—चलो, राजकुमारी, आजकी बारात एक नवीन पद्धतिसे निकलेगी। विवाहके पूर्व ही वर-वधू सम्मलित उस बारातमें चलेंगे ! तुम चलो, विन्ध्यबाला !

विन्ध्यबाला—(संकोच करती हुई) मैं भी चलूँ ?

सुरभी पाठक—क्यों ? अवश्य चलो। उस विदुषी और ज्ञानकी प्रतिमाको शोक क्या यहाँ तक प्रभावित करेगा कि आजके युगान्तर उपस्थित करनेवाले अवसरपर महाकोशलकी वह सच्ची देवी वहाँ उपस्थित न रहेगी ?

विन्ध्यबाला—नहीं, इसलिए नहीं, गुरुदेव, परन्तु मुझ विधवाका इस शुभ अवसरपर उपस्थित होना अशुभ न....

सुरभी पाठक—आह ! क्या कहती हो, क्या कहती हो ? विन्ध्यबाला, तुम्हारा प्रत्येक अवसरपर उपस्थित रहना प्रत्येकके लिए महाशुभ और महा-मंगलप्रद है। फिर तुम्हारा ही क्यों, जिन्हें वैधव्य प्राप्त हो गया है और जो एक पवित्र व्रतके कारण अपना सारा जीवन महान् संयम एवं अद्भुत स्वार्थत्यागसे व्यतीत कर समस्त संसारको संयम तथा त्यागका जीता-जागता उदाहरण बता रहीं हैं, अपने तपसे समाजका शुभ और मंगल कर रहीं हैं, उनका शुभ तथा मंगलकारी अवसरोंपर उपस्थित होना अशुभ और अमंगल ? कृतघ्नताकी सीमा होती है ! विधवाओंके प्रति समाजका यह निन्दनीय व्यवहार,—उनका यह नीच तिरस्कार, ओह, असहनीय है ! विन्ध्यबाला, सर्वथा असहनीय है ! समाजके हृदयसे इन कलुषित भावोंका मूलोच्छेद करना होगा। चलो, अवश्य चलो,—तुम्हें चलना ही होगा।

यदुराय—(लम्बी साँस लेकर) इस समस्त सुखमें इनका यह दुःख और नागदेवका वियोग तो सहा नहीं जाता, गुरुदेव। आह, मित्रके संग जीवनके दुःख भी सुखसे सहन किये जा सकते हैं, परन्तु, मित्रके बिना जीवनके सुख भी भार-स्वरूप हो जाते हैं। संसारमें सबसे बड़ा दुःख कदाचित् मित्ररहित होना है।

सुरभी पाठक—परन्तु पश्चात्ताप निरर्थक है, वीरवर, पश्चात्तापसे मनुष्यको पीछेकी ओर देखना पड़ता है। सुख या दुःख किसी भी परिस्थितिमें मनुष्यको पीछे न देखकर सामनेकी ओर ही दृष्टि रखनी चाहिए।

[परदा गिरता है]

छठा दृश्य

स्थान—एक जंगली मार्ग। **समय**—सन्ध्या।

[वृक्षोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता। कुछ गोंड़ोंका एक ओरसे तथा एकका दूसरी ओरसे प्रवेश]

एक गोंड़—जुलूस धुआँधारपर पहुँच गया?

दूसरी ओरसे आया हुआ गोंड़—जुलूस पहुँच गया! अरे विवाह भी हो गया! अब राजगद्दीकी व्यवस्था हो रही है।

पहला—फिर तुम लोग कहाँ जा रहे हो?

दूसरा—कुछ साथी रह गये हैं, उन्हें लेने; अभी आते हैं। (प्रस्थान)

पहला—चलो भाई, हम भी चलें पर अपना गाना गाते हुए।

वीरों, गाओ गौरव-गान।
तलवारोंकी झंकारोंसे
वीरोंकी रण-हुंकारोंसे,
बहरा कर दो कुलाभिमान। वीरो०
घिरें घटायें तीक्ष्ण शरोंकी,
वर्षा होवे मुण्डकरोंकी,
उनके ही शोणितमें डूबे,
उनके ऊँचे कुलकी शान। वीरो०
नहीं शौर्य कुल धनका वासी,
विजय-बधू वीरोंकी दासी,
प्रसभ प्रहारोंसे करवा दो,
आज उन्हें इसका ही भान। वीरो०

[सबका प्रस्थान। परदा उठता है।]

सातवाँ दृश्य

स्थान—धुआँधार

समय—सन्ध्या

[सामनेको दूरपर जल-प्रपात है। उसके आगे सामनेकी ओर सुन्दर मण्डप बना हुआ है। काष्ठके खुदावदार स्तम्भोंपर, जिनपर सुवर्णका काम है, मण्डपकी केशरी रंगके कपड़ेकी छत तनी हुई है। उसके चारों ओर पल्लवों और पुष्पोंकी बन्दन-वार बाँधी गई है। चारों कोनोंपर कदली स्तम्भ और उनके निकट सुवर्णके मंगल-कलश रक्खे हुए हैं। सोनेकी दीवटोंपर रत्नजटित दीपक जल रहे हैं और धूप-दानियोंमें धूप हो रही है। मण्डपके बीचमें सुवर्णका रत्नजटित-सिंहासन रक्खा है और उसके सामने अर्ध-चन्द्राकार पंक्तियोंमें रत्नजटित आसंदियाँ रक्खी हुई हैं। सिंहासनपर विजयसिंह देव बैठे हुए हैं। उनकी वेष-भूषा सदाके समान है। अन्तर इतना ही है कि उनके मस्तकपर आज राज-मुकुट और हाथमें राज-दण्ड भी है। छत्रवाहिका उनके सिरपर श्वेत-छत्र लगाये हुए हैं और दोनों चामर-वाहिकाएँ चामर तथा दोनों व्यजन-वाहिकाएँ व्यजन डुला रहीं हैं। आसंदियोंमेंसे बीचकी दो आसंदियोंपर यदुराय और सुरभी पाठक तथा शेषपर सामंत और कुलपुत्र बैठे हुए हैं। सबके मुख सिंहासनकी ओर हैं और वेष-भूषा सदाके समान है। एक ओर स्त्रियाँ आसंदियोंपर बैठी हैं। उन्हींमें रेवासुन्दरी और विन्ध्यबाला हैं। महाप्रतिहार तथा अनेक प्रतिहार यथास्थान खड़े हुए हैं। महाप्रतिहार लगभग ६० वर्षकी अवस्थाका ऊँचा और साधारणतया मोटा मनुष्य है। सिर और मूँछों तथा दाढ़ीके बाल लम्बे हैं जो सफेद हो गये हैं। सिरपर वह श्वेत पगड़ी बाँधे है तथा शरीरपर कंचुक (एक प्रकारका अँगरखा) और अधोवस्त्र पहिने है। कमरमें सुनहरी कमरपट्टा है; जिसके बाईं ओर सुवर्णकी मूठका खड्ग लटक रहा है। वह भी कुण्डल, हार, केयूर, वलय और मुद्रिकाएँ पहिने है। मस्तकपर केशरका त्रिपुण्ड और पैरोंमें काष्ठकी पादुकाएँ हैं। उसके दाहिने हाथमें सुवर्णकी ऊँची छड़ी और बाँए हाथमें शङ्ख है। शेष प्रतिहारोंकी वेष-भूषा

महाप्रतिहारसे मिलती है, परन्तु उनके हाथोंमें छड़ी और शङ्ख नहीं हैं। मण्डपके बाहर चारों ओर बहुतसे सर्वसाधारण व्यक्ति भी खड़े हुए हैं। एक ओर पंच महा-वाद्यके वादक बैठे हैं। सामन्तों और जनसमुदायमें गोंड़ भी हैं।]

विजयसिंह देव—महाकोशलके कुलपुत्रो, सामन्तो, श्रेष्ठियो, और अन्य उपस्थित महानुभावो, और भगिनियो! आजका दिवस मैं अपने जीवनका सर्वश्रेष्ठ दिवस मानता हूँ, क्यों कि आज मैं अपने जीवनमें उस कार्यको कर रहा हूँ जिसे मैं अपने जीवनका सर्वश्रेष्ठ कार्य समझता हूँ।

जनता—धन्य है! धन्य है!

विजयसिंह देव—मेरी एक मात्र कन्या रेवासुन्दरीका शुभ विवाह अभी महाधर्म्माध्यक्षने धर्मकी रीतिसे महाकोशलके उद्धारकर्ता वीर-शिरोमणि यदुरायके संग करा दिया है। मैंने कन्या-दानका संकल्प इस महाकोशलके सर्वश्रेष्ठ तीर्थस्थलपर कर दिया है। यह ऐसा कन्यादान हुआ है जैसा आजपर्यन्त महाकोशलके किसी भी कलचुरि-नरेशने कभी न किया था।

जनता—अवश्य, अवश्य।

विजयसिंह देव—जिस अकुलीन कहे जानेवाले गोंड़को महाकोशलके सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण सुरभी पाठकने इसी स्थानपर क्षत्रिय बना यज्ञोपवीत दान किया था, आज उसे महाकोशलके पण्डित-समाजने क्षत्रिय मान लियाँ है और यहाँके सम्राटने उसे अपनी कन्या दानकर क्षत्रिय माननेका सबसे बड़ा प्रमाण उपस्थित किया है।

कुछ व्यक्ति—महाकोशलके महासेनापतिकी जय।

कुछ व्यक्ति—वीर-शिरोमणि यदुरायकी जय।

कुछ व्यक्ति—महाकोशलके सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणकी जय !

कुछ व्यक्ति—गुरुदेव सुरभी पाठककी जय !

कुछ व्यक्ति—परम भट्टारक विजयसिंह देवकी जय !

विजयसिंह देव—जिन्हें कुछ समय पूर्व जिस धर्मके अनुसार और प्राणदण्डकी व्यवस्था की गई थी, उसी धर्मके अनुसार उसी राज्यमें उन्हींका यह उत्कर्ष, इस बातको सिद्ध कर देता है कि संसारमें कर्म ही मुख्य है और कुलीनता कर्मपर निर्भर रहती है ।

जनता—अवश्य, अवश्य ।

विजयसिंह देव—जिसने देशको विदेशियोंसे स्वतंत्र किया है, जिसने आज वह कर्म करके बताया है जो बड़े बड़े कुलीन भी न कर सके थे, वही इस राज्यका सच्चा अधिकारी है और आप सबकी सम्मतिसे उसीको मैं महाकोशलका राज-तिलक कर यह राज-मुकुट, राज-दण्ड तथा समस्त राज-चिह्न अर्पण करता हूँ ।

जनता—धन्य है, धन्य है ।

विजयसिंह देव—आजसे यह नवीन 'राजगोंड़-कुल' महाकोशल-पर राज्य करेगा और चूँकि अपने जीवनके इस सर्व-श्रेष्ठकार्यको आज मैं अपने हाथोंसे सम्पादित कर रहा हूँ, इसलिए, जैसा मैंने अभी कहा है, आजके दिवसको मैं अपने जीवनका सर्वश्रेष्ठ दिवस मानता हूँ ।

जनता—परम भट्टारक विजयसिंह देवकी जय !

[विजयसिंहदेव सिंहासनपरसे उठ खड़े होते हैं और यदुरायके पास जा उन्हें हाथ पकड़कर उठा सिंहासनपर बैठाते हैं । महाधर्माध्यक्ष अपनी आसंदीसे उठकर जाते हैं । वे एक वृद्ध ब्राह्मण हैं, श्वेत लम्बी दाढ़ी और शिखा है । उत्तरीय और अधोवस्त्र धारण किये हुए हैं । निराभरण

हैं। उन्हींके साथ उसी वेषमें एक पण्डित सोनेका थाल लेकर आता है जिसमें सोनेका एक कलश रक्खा है। उसमें जल और कुश है। थालीमें कुंकुम, अक्षत इत्यादि रक्खे हैं। धर्माध्यक्ष सिंहासनके पास जा यदुराय-को कुंकुमसे तिलक कर अक्षत लगाते हैं। विजयसिंहदेव अपना राज-मुकुट यदुरायके मस्तकपर धारण करा हाथमें राज-दण्ड देते हैं। महाधर्माध्यक्ष कलश उठा कुशसे यदुरायपर जल छिड़ककर वेदोक्त-मंत्र स्वरसहित बोलते हैं—]

महाधर्माध्यक्ष—याभिरद्भिरिन्द्रमभ्यसिञ्चत् प्रजापतिः सोमं राजानं वरुणं यमं मनुं ताभिरद्भिः सिञ्चामि त्वामहं राज्ञां त्वमधिराजो भवेह।

[शृंग, रम्भट, शंख, भेरी और जयघण्ट ये पंच महा-वाद्य बजते हैं।]

महा-प्रतिहार—(शंख बजाकर) जय, परम-माहेश्वर, परम-भट्टारक, परमेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, त्रिकलिंगाधि-पति, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, सम्राट् श्री यदुराय देवकी जय!

[महाप्रतिहार फिर शंख बजाता है और चारों ओर जयघोष होते हैं]

विजयसिंह देव—(खड़े खड़े) अब आज एक कार्य शेष है। कलचुरि वंशके इस पवित्र सिंहासनपर बैठे बैठे मैंने जो महाकोशल देशको माण्डलिक राज्य बनानेका पाप किया था उसका मुझे प्रायश्चित्त करना है। यही कारण है कि रेवासुन्दरीका शुभ विवाह और यदुरायका राज्याभिषेक त्रिपुरीके राज-प्रासादमें न कर धुआँधारपर किया गया है। कपिशाके महाराजा जयपालने जीवित ही अग्नि-समाधि ली थी, महोबाके राजा परमाल देवने जीवित ही जल-समाधि ली थी और ये ही दो नरेश नहीं, पर कलचुरि वंशके परमप्रतापी सम्राट् पूज्यपाद गांगेय देव भी जल-समाधि ले चुके हैं। आर्योंमें यह कोई नवीन पद्धति नहीं है। अतः "महाजनो येन गतः स पन्थः" के अनुसार मैं भी उसी पथका अनुसरण करूँगा। महाकोशलके इस

सर्वश्रेष्ठ तीर्थपर, इस पुण्यपूत नर्मदाके जलप्रपातमें मैं भी आज जीवित ही जल-समाधि लूँगा। यही आजका शेष कार्य है जो अब पूर्ण होगा। (शीघ्रतासे प्रस्थान)

विन्ध्यबाला—(खड़े होकर) नहीं नहीं, आजका एक और भी कार्य शेष है। जिस स्त्रीके कारण उसके पतिका वध हुआ है उस स्त्रीको भी अपने पापका प्रायश्चित्त करना है। यह प्रायश्चित्त यद्यपि पतिके शवके संग चितारोहण करके ही होना था, परन्तु उस समय देश स्वतंत्र नहीं हुआ था। पतिने जो देशको विदेशियोंके हाथ बेचने-वालोंके संग सहयोग किया था उस पातकका प्रायश्चित्त भी उसकी अर्धांगिनीके नाते पत्नीको ही करना था। पतिके उस पापका प्रायश्चित्त वह पतिके खड्गसे ही विदेशियोंको बाहर निकालकर कर चुकी। देश स्वतंत्र हो गया है। देशमें शक्तिशाली राज्यकी भी स्थापना हो गई है। अब एक क्षण भी उस क्षणभंगुर शरीरको रखना, जिसके द्वारा एक महा-पातक हो गया है, स्वार्थपरताके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पतिके जिस खड्गसे उसकी पत्नीने पतिके पापका प्रायश्चित्त किया है उसी खड्गसे वह अब अपने पापका भी प्रायश्चित्त करती है। (विन्ध्यबाला खड्ग अपने हृदयमें मारकर गिरती है। उसी समय सामने विजय-सिंह देव जलप्रपातमें कूदते हुए दिखते हैं।)

रेवासुन्दरी—(खड़े होकर) हैं हैं! यह क्या, यह क्या?

[कोलाहल होता है। कोई खड़े हो जाते हैं। कोई बैठे रहते हैं। सब आश्चर्यचकित रह जाते हैं।]

यवनिका-पतन

समाप्त